आचार्य श्री तुलसी धवल समारोह के अभिनन्दन में

अणुव्रत की ओर

द्वितीय भाग

भूमिका
मुनि श्री नगराजजी

सम्पादक
मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

प्रबन्ध सम्पादक
श्री सोहनलाल बाफणा
उपमंत्री अणुव्रत समिति दिल्ली

१९६१
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

ANUVRAT KI OR

by

Muni Shri Mahendrakumarji 'Pratham

Rs. 2.00

(श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा कलकत्ता-१ के सौजन्य से प्राप्त)

प्रकाशक

रामलाल पुरी संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली

शाखायें

हौज खास, नई दिल्ली

चौड़ा रास्ता जयपुर

माई हीरां गेट, जालन्धर

बेगमपुल रोड मेरठ

विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़

मूल्य दो रुपए

प्रथम संस्करण : १९६१

मुद्रक

सैन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस,

कमलानगर दिल्ली ६

भूमिका

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् श्री महावीर ने भारतवर्ष के पूर्वी अंचल से पांच अणुव्रतों का सन्देश दिया था। गौतम बुद्ध ने लगभग उसी युग में और उसी अंचल से पंचशील का सन्देश दिया था। वे सन्देश पूर्व से चलकर भारतवर्ष की पश्चिमी सीमाओं से ही नहीं टकराए, अपितु कालान्तर से वे समुद्रों-पार भी पहुंच गए। अणुव्रत-आन्दोलन का घोष भारतवर्ष के पश्चिमी अंचल राजस्थान में महर्षि मूर्धन्य आचार्य श्री तुलसी के मुख से उठा और देश की सुविस्तृत सीमाओं तक पहुंचा। पूर्व के लोगों ने माना महावीर और बुद्ध का वही सन्देश पश्चिम से प्रतिध्वनित होकर पुनः हमारे कानों में पड़ा है तो उत्तर और दक्षिण के लोगों ने माना भारतवर्ष ऐसे पुरुषों को सदा से ही पैदा करता रहा है, जो बिखरी हुई समाज की धुरी को धारण करके रखते हैं।

आन्दोलन के साथ सबका अपनत्व हुआ। उसकी चर्चा झोंपड़ियों में चली और लोक-सभा तथा विधान-सभाओं में भी चली। उसे जनता का सहयोग मिला और जननेताओं का भी। देश के धर्मगुरु इस ओर सक्रिय हुए तो देश के विचारक और साहित्यकार भी। आन्दोलन की अन्तिम परीक्षा बुद्धिजीवी लोगों में हुई और वह वहां खरा उतरा। 'अणुव्रत की ओर' आन्दोलन का बाह्य प्रतिबिम्ब नहीं वह उसके अन्तर का प्रतिबिम्ब है। वह ऐसे लेखकों की लेखिनी से आविर्भूत हुआ है जिनकी पैनी दृष्टि स्थूल को भेदकर अन्तर को ग्रहण करने में समर्थ है।

अणुव्रत-आन्दोलन एक विचार-क्रान्ति है। वह प्रत्येक निर्माण का आद्यबिन्दु विचारों में देखता है। विगत बारह वर्षों में अणुव्रत-आन्दोलन ने देश में क्या किया वह किसी भौतिक कलेवर के रूप में नहीं देखा जा सकता और न वह तोल-माप व संख्या का विषय ही बन सकता है। वह अमूर्त निर्माण है

जो कोटि कोटि लोगों के मन से प्रसृत हुआ है। वह विचार निर्माण कार्यक्रम में परिणत होता भी दृष्टिगोचर हो रहा है। नैतिकता शब्द प्रशासन में आ रहा है, शिक्षण केन्द्रों में आ रहा है, योजना आयोग में आ रहा है तथा वह मंडी और बाजारों और रचनात्मक संस्थाओं में आ रहा है। नैतिकता शब्द को आगे लाने में अणुव्रत-आन्दोलन देश में अपना निरुपम स्थान रखता है। ऐसे अभियान की देश में अनिवार्य अपेक्षा थी जो केवल नैतिक अभ्युदय को ही अपना ध्येय बनाकर आगे बढ़े। अणुव्रत आन्दोलन ने इस अपेक्षा को पर्याप्त रूप से पूरा किया है।

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने प्रकीर्ण विचार-मुक्ताओं को एक सूत्र में पिरोकर एक बहुमूल्य हार बना दिया है। विचार एक स्थायी सम्पत्ति होते हैं। उन्हें संजोकर किसी सुरक्षित मंजूषा में रख दिया जाता है तो वे युग-युग के लिए प्रेरणा-दीप हो जाते हैं। मुनि महेन्द्रकुमारजी ने अणुव्रत-आन्दोलन के प्रचार प्रसार में बहुत सारे मौलिक कार्य किये हैं। साहित्य के क्षेत्र में भी आन्दोलन को मान्यता दिलाने में उनकी सूझ बूझ और उनका श्रम अपूर्व है। एक युग था जब साहित्यकारों को आन्दोलन में साम्प्रदायिक गन्ध आती थी तेज और प्रभाव नहीं लगता था। मुनि महेन्द्रकुमारजी ने भ्रान्ति की इस दुर्भेद्य दीवार को हटाने के लिए साहित्यकारों पत्रकारों तथा अन्य विचारकों से व्यक्तिगत सम्पर्क साधा। अनेकशः सुविस्तृत चर्चाएं कीं। उनकी आशंकाओं का बुद्धिगम्य समाधान दिया और उन्हें आन्दोलन के प्रति प्रभावित किया। दिल्ली, जयपुर, बम्बई, लखनऊ और कलकत्ता उनके कार्यक्षेत्र रहे। अपने कार्य में उन्होंने धूप छाया और दूरी की जरा भी परवाह नहीं की। दरवाजे से दरवाजे पर घूमकर जन-सम्पर्क का जो उन्होंने मार्ग अपनाया वह सर्वथा नवीन और उनके आत्म-साहस का परिचायक था। आदर और तिरस्कार को सम रूप से समझ सकने वाला व्यक्ति इसमें सफल हो सकता है। उनकी योग्यता, धैर्य तथा कार्य-निष्ठा को देखकर अनेक लोग मुग्ध होते थे। एक बार वह घूमते-फिरते सुप्रसिद्ध विचारक और साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमारजी के घर पहुंचे। जैनेन्द्रकुमारजी ने पूछा—'आज आप कितने साहित्यकारों से अब तक सम्पर्क कर चुके हैं।' मुनि

महेन्द्रकुमारजी ने स्मित भाव में उत्तर दिया—आपका नम्बर सातवां है। जैनेन्द्रकुमारजी ने कहा—आपकी कार्यक्षमता के प्रति मेरे मन में ईर्ष्या होती है। काश मैं भी ऐसा कर्मण्य होता। ऐसे ही एक प्रसंग पर काका कालेलकर ने कहा—आप मेरे घर पर आए इससे जैन साधुओं के प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ी। मेरा अब तक का अनुभव यही था कि जैन साधु सबको अपने यहां ही बुलाकर खुश होते हैं। अस्तु, उनके व्यक्तिगत सम्पर्क के कटु और मधुर संस्मरणों का एक लम्बा ब्यौरा है और किसी दिन वह अणुव्रत इतिहास का एक प्रेरणाप्रद अध्याय बनेगा। तदनन्तर मुनि मोहनलालजी 'शार्दूल' आदि और भी अनेक मुनियों ने इस क्षेत्र में कार्य किया और कर रहे हैं। इस कार्य-शैली का परिणाम हुआ कि अणुव्रत-आन्दोलन बहुत शीघ्र ही देश के बुद्धिजीवी लोगों की लेखिनी और वाणी का विषय बना।

पिछले वर्षों मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' हस्तलिखित 'जय-ज्योति' पत्रिका का कलात्मक ढंग से सम्पादन करते रहे हैं। उन्होंने दो अणुव्रत विशेषांक भी निकाले। 'अणुव्रत की ओर' में अधिकांश लेख वे ही हैं जो उक्त विशेषांकों में लिए गए हैं तथा कुछ अन्य भी। कुल मिलाकर १७ निबन्धों का यह संकलन अणुव्रत साहित्य में श्रीवर्धक और जन-मानस के लिए एक नैतिक पाथेय होगा ऐसी आशा है।

- जून १९६१ }
दिल्ली }

—मुनि नगराज

सम्पादकीय

साहित्य मनुष्य की निरुपम सम्पत्ति है। साहित्य ही भूत को वर्तमान से और वर्तमान को भविष्य से जोड़ता है। सहस्रों वर्ष पूर्व मनुष्य ने जो सोचा आज के मनुष्य को विरासत के रूप में मिलता है और आज मनुष्य जो सोचता है वह साहित्य के माध्यम से आने वाली पीढ़ी की विरासत बनता है। एक युग वह भी था जब मनुष्य लिखने का आदी नहीं था। तब मुखाम्नाय परम्परा से ही अपना ज्ञान अगली पीढ़ी को देता था। साहित्य की यह धारा नाना रूपों में हर एक युग में बहती ही रही है और मनुष्य इससे उपकृत होता ही रहा है।

अणुव्रत-आन्दोलन एक नैतिक प्रवाह है। रक्त का संचार जैसे हर एक धमनि में आवश्यक होता है नैतिकता का संचार भी जीवन के हर व्यवसाय और युग के हर चरण में अपेक्षित है। साहित्य ही उस नैतिक विद्युत् का वाहक तत्त्व है। अणुव्रत की ओर से लोगों को नैतिक प्रेरणाएं ही नहीं मिलेंगी वह एक युग की स्थिति का ब्यौरा भी युग-युग में देता रहेगा। चिन्तन और मनन की दृष्टि से भी उससे पाठकों को बहुत सामग्री उपलब्ध होगी।

अणुव्रत साहित्य अब तक पर्याप्त समृद्ध हो चुका है। अनेकों विवेचनात्मक पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं पर यह संकलन अपने प्रकार का है। एक ही कृति में देश के अनेकानेक विचारकों के विचार इसकी अपनी विशेषता है। अणुव्रत पर अब तक लेख रूप में जितना लिखा गया है, वह समग्र इस संकलन में नहीं आ सका है। विद्वान् मुनियों ने लेख रूप में जितना लिखा है उसका स्वतन्त्र संकलन कई खण्डों में प्राप्त साध्य है। इतर विद्वानों ने जो अब तक लिखा है उसमें से भी प्रस्तुत संकलन में चुने हुए लेख ही लिए जा सके हैं। कुछ एक वक्ताओं के भाषणों को भी संगृहीत कर लेखों का रूप दे दिया गया है ताकि सर्वसाधारण के लिए उनके अणुव्रत सम्बन्धी विचार सदा सुलभ रह सकें।

अणुव्रत की ओर के लेख केवल प्रभावना-बुद्धि से ही नहीं लिखे गए हैं उनमें मर्मस्पर्शी चिन्तन भी प्रस्तुत किया गया है। ऐसा लगता है आचार्य श्री तुलसी का यह कार्य उत्तरोत्तर एक समाज-दर्शन का रूप ले रहा है। हर एक दर्शन की उद्गम गाथा भी तो यही है कि पहले वह आप्त उपदेशों के रूप में लोकग्राही बना और तत्पश्चात् तर्कजीवी मनीषियों के चिन्तन का विषय होकर दर्शन बना।

प्रस्तुत पुस्तक अणुव्रत-आन्दोलन के इतिहास, उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, नवीन समाज रचना में उपयोगिता आदि विविध पहलुओं पर प्रकाश डालती है। मेरा अनुमान था कि उपलब्ध सामग्री एक ही आकार में समा जायेगी, पर उसकी बहुलता ने ऐसा होने नहीं दिया। इस संग्रह को दो भागों में विभक्त करना पड़ा है।

कुछ निबन्ध प्राचीन हैं, अतः उनमें आन्दोलन के स्थान पर संघ शब्द का व्यवहार हुआ है। सम्पादन में उनके इतिहास को सुरक्षित रखने की दृष्टि से कोई परिवर्तन नहीं किया गया। वे निबन्ध किस समय लिखे गए, इसकी खोज बीन करने पर भी तिथि का पता न चल सका, अतः उस उल्लेख से भी पुस्तक को बचाना पड़ा।

आचार्य श्री तुलसी को गुरु के रूप में पाकर तो मैं कृतकृत्य हूं ही, किन्तु मेरे लिए यह भी गौरवास्पद है कि मुझे मुनि श्री नगराजजी का सतत कार्य दर्शन मिलता रहा है। मुनि श्री आन्दोलन के विचार और कर्तृत्व दोनों पक्षों के विकास में सक्रिय प्रयत्नशील रहे हैं। आन्दोलन की प्रत्येक दिशा में उनका मूल्यवान योग रहा है। प्रस्तुत उपक्रम भी उनके मार्ग-दर्शन का ही सुपरिणाम है।

२७ जून १९६१
इण्डियन जैन स्मृति भवन
नया बाजार, दिल्ली

—मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'

अनुक्रम

१

अणुव्रत : असाम्प्रदायिक आन्दोलन

—श्री जयप्रकाशनारायण

लोगों के लिए यह आश्चर्य का विषय होगा कि मेरे जैसा व्यक्ति किस प्रकार घूम भटक कर राजनीति से सर्वोदय व अणुव्रत जैसे आध्यात्मिक क्षेत्र में आ गया। मेरे जीवन के तीन पहलू हैं—एक जब मैं हिंसा और साम्यवादी विचारों में विश्वास करता था दूसरा लोकतन्त्रात्मक समाजवादी का और अन्त में जब देखा कि मेरे समाज-कल्याण के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए ये तरीके उचित नहीं हैं तो सर्वोदय और अणुव्रत जैसे अध्यात्म-पथ को ही उचित मार्ग मानकर इस ओर लग गया हूँ। इस तरह मैंने अपने तरीके बदले हैं, लेकिन मेरा लक्ष्य नहीं है।

आचार्य श्री तुलसी के नेतृत्व में जो मंगलकारी कार्य हो रहा है उसके साथ मैं तन्मय हूँ और मेरी जो कुछ भी शक्ति है, उसे इस पुण्य कार्य में लगाने को तत्पर हूँ। वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में अशान्ति का अन्धकार छाया है। मनुष्य का नैतिक पतन तीव्र गति से बढ़ रहा है। ऐसी स्थिति में जबकि चारों ओर नैतिक व आध्यात्मिक संकट छाया हुआ है चाहे कितनी भी लम्बी-लम्बी योजनाएं आज क्यों न बनाई जाएं बड़े-बड़े कल-कारखाने क्यों न खोले जाएं, सहकारी खेती आदि क्यों न कराई जाए; सब निष्फल होने वाले हैं। यदि मानवता का विकास नहीं हुआ तो ऐसी परिस्थिति में सर्वनाश ही होने वाला है। इस आणविक युग में यदि व्यक्ति के जीवन में वैयक्तिक व सामाजिक धर्म का प्रतिष्ठान नहीं होता है तो विज्ञान के द्वारा संसार का सर्वनाश होने वाला है और इस तरह मानव का अस्तित्व ही इस पृथ्वी से उठ जाएगा।

आज लोगों के सामने चन्द्रलोक पहुँचने से भी पहले मानव बनने की

आवश्यकता है। इसके लिए अपेक्षा इस बात की है कि उनके दैनिक जीवन-व्यवहार में सामाजिकता के आधार पर धर्म — करुणा, मैत्री, नैतिकता और आध्यात्मिकता की प्रतिष्ठा हो। यह कार्य धर्म का है जिसे धर्म-गुरु सदा किया करते हैं परन्तु वैयक्तिक दायरे में ही, सामाजिक दायरे में नहीं। आज के सामाजिक जीवन का धर्म से सम्बन्ध हो ऐसा दिखाई नहीं पड़ता। आधुनिक युग में व्यक्तिगत साधना के युग में हमारे देश में एक महापुरुष (गांधीजी) आया जिसने स्वतन्त्रता-संग्राम को आध्यात्मिक रूप दिया, धर्म-प्रचार को सामूहिक रूप दिया। इस प्रकार उसने सामूहिक आध्यात्मिक साधना के द्वारा समाज को आगे बढ़ाया।

हमारे देश में तपस्वियों की कमी नहीं रही है। आज भी अनेक साधु-सन्त जंगलों, पहाड़ों या कन्दराओं में एकान्तिक साधना करते मिलेंगे पर समाज के लिए उनका कोई लाभ नहीं। वे चाहे अपने में कितने भी महान् क्यों न हों यदि उन्हें समाज से प्रयोजन नहीं तो मेरा भी उनसे कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसे एकान्तिक साधना में रत तपस्वियों के अन्ध-श्रद्धालु भक्त कभी-कभी तो यहां तक कह देते हैं कि अमुक पर्वत पर तपस्या करने वाले अमुक सन्त की तपस्या के प्रभाव से हमारा देश स्वतन्त्र हुआ है। हुआ होगा पर मुझे तो ऐसी प्रतीति नहीं होती।

मैं तो भगवान् बुद्ध के उस आदर्श को समाज-कल्याण के लिए आदर्श मानता हूँ जब उन्होंने यह निश्चय किया कि मैं अकेले तब तक स्वर्ग के द्वार में प्रवेश नहीं करूंगा जब तक कि वहां सभी मानवों का प्रवेश नहीं होगा। यह सामूहिक निर्वाण और लाभ की कल्पना थी। मेरा भी यही लक्ष्य है कि सबके उठे बिना एक के उठने से कल्याण नहीं हो जाता है। भगवान् महावीर ने भिक्षुओं को संघी बनाकर जीवमात्र के लिए यह आन्दोलन चलाया। उनका कहना था कि जब तक सारे मानव समाज का विकास नहीं होगा तब तक किसी चीज में सफलता नहीं मिल सकती। भारतवासियों का उत्थान हो इसके लिए उन्होंने अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया। स्वामी विवेकानन्द का उदाहरण भी हमारे सामने है। उनके लिए कौन-सी सुख-सुविधा की कमी थी

लेकिन उन्होंने सामाजिक जीवन में प्रवेश किया और लोगों को सामूहिक साधना की ओर उन्मुख किया।

गांधीजी ने इस दिशा में एक नई परम्परा कायम की। उन्होंने सामूहिक आध्यात्मिक-क्रान्ति का सूत्रपात किया। इस आध्यात्मिक क्रान्ति का अर्थ यह है कि जब तक सारे मानव-समाज का उद्धार नहीं हो जाता तब तक वैयक्तिक मोक्ष प्राप्त नहीं होगा।

गांधीजी मेरे लिए आदर्श इसलिए हैं कि उन्होंने परमात्मा की खोज मानव-समाज में की और उसे ऊपर उठाया। आज के अन्धकारपूर्ण युग में सन्त विनोबा और आचार्य तुलसी ये दो दीपक समाज को प्रकाश प्रदान कर रहे हैं। जीवन-विकास की दिशा में आचार्यप्रवर एक खोज कर रहे हैं विनोबा भी खोज कर रहे हैं कि धर्म को जीवन से कैसे जोड़ा जाए, किस प्रकार सामूहिक कार्यक्रम आगे रखा जाए? यह कोई आसान सवाल नहीं है।

अणुव्रत और सर्वोदय इन प्रश्नों में से दो उत्तर हैं। ये राजनीतिक या आर्थिक स्तरों पर नहीं, बल्कि नैतिक स्तरों पर मानवता को उठाने और विकसित करने में लगे हैं। इनके कुछ परिणाम भी निकले हैं। यद्यपि उनके परिणाम बहुत कम दृष्टिगोचर होते हैं पर मैं ऐसे कार्यों की तुलना आइसबर्ग के छोटे-छोटे भागों से करता हूं। जिस तरह वे दुकड़े ऊपर दिखाई देते हैं उससे भी कहीं अधिक समुद्र के जल में छुपे रहते हैं। उसी तरह इन अच्छे कार्यों के परिणाम ऊपर से चाहे छोटे प्रतीत होते हों पर इन्होंने नीचे गहराई तक असर डाला हुआ है। इनके छिपे हुए परिणाम भी धीरे-धीरे सामने आते हैं, पर उनके प्रकाश में आने में समय लगता है। कुछ लोग अणुव्रती बने कुछ ने भूदान सम्पत्ति-दान आदि किया पर इनका प्रभाव इन आंकड़ों से सही रूप में नहीं आंका जा सकता क्योंकि उसका बीज अनेक लोगों में काम करता है और एक लम्बी अवधि के बाद जब उसका अंकुर पल्लवित और पुष्पित होता है, तब वह दृष्टिगत होता है।

आदर्श समाज की कल्पना है कि उसमें प्रेम समता, सहकार व न्याय की

प्रधानता होगी और वह शोषण-विहीन होगा। इस लक्ष्य की प्राप्ति न तो हिंसा से सम्भव है—जैसा कि रूस में जारशाही को मिटाकर भी शान्ति नहीं है और न वह कानून से ही प्राप्त किया जा सकता है जिसका कि प्रयोग समाजवादी संस्थाओं के द्वारा इंग्लैण्ड में हुआ और भारत में हो रहा है। इन तरीकों से इस लक्ष्य की प्राप्ति इसलिए सम्भव नहीं हुई कि उनसे समाज और संस्थाएं बदलीं राष्ट्रीयकरण हुआ पर तब भी आदर्श समाज का स्वप्न आदर्श ही बना रहा। अब सारे संसार में यह अनुभव किया जाने लगा है कि मानव सुधार और मानवीय सुधार-विकास के लक्ष्य की प्राप्ति बाह्य परिवर्तनों व हिंसा या कानून से नहीं हो सकती। उसके लिए महात्मा गांधी विनोबा व आचार्य श्री तुलसी का पथ ही सही उपाय है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार की जितनी भी धाराएं हैं यदि एक हो जाएं तो देश में महान् कार्य हो सकता है। सत्य प्रेम अहिंसा आदि तत्त्व जो अणुव्रत के मूल हैं, उनकी प्रतिष्ठा सभी मत या धर्म के साधु सन्तों ने की है। वे शाश्वत तत्त्व केवल विनोबा या आचार्य श्री तुलसी के ही नहीं हैं। लोग चाहे जिस मत को मानते हों पर वे समझें कि जीवन की गाड़ी कुछ सार्वभौम नैतिक मूल्यों की पटरियों पर चलती है। इससे च्युत हो जाने पर वह ऐसी खाई में जा गिरेगी कि वहां से आज का वैज्ञानिक चरमोत्कर्ष भी त्राण नहीं दिला सकता। विज्ञान के प्रादुर्भाव से ही धर्म के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियों का विकास हुआ है। मानव के लिए यह एक चुनौती है, जिसने मानव समाज को सर्वनाश के कगार पर ला खड़ा किया है। इसके उत्तर में जरूरत इस बात की है कि धर्म और अध्यात्म जो मानव जीवन से बिछुड़ गए हैं जीवन में समरस किये जाएं। इससे विज्ञान का विनाशकारी रूप भी कल्याणकारी हो जायेगा।

अणुव्रत-आन्दोलन असाम्प्रदायिक और सार्वभौम है। यह चाहे जिस नाम से चले। हमें काम से मतलब है और इसका नामकरण चाहे जो भी कर दिया जाए, लाभ नहीं होगा। इसलिए अपेक्षा यह है कि आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित नैतिक अभ्युत्थान के इस पथ को समझ, परख और सीखकर जीवन में

अनुकरण करें, साथ ही उसके आधार पर अपने व्यवसाय उद्योग व धन्धे में ऐसे ठोस कदम उठाएं, जिनसे जन-जीवन को भी प्रेरणा मिल सके। धर्म केवल नाम लेने जय-जयकार करने और मस्तक झुकाने से नहीं होता अपितु आचरणों में परिलक्षित होता है।

२

मानवता की महान् सेवा

—उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

आज लोगों में जो नैतिक पतन हो रहा है उसे देखकर मेरे हृदय में एक व्यथा पैदा हो जाती है। लोग बात अहिंसा की करते हैं पर समय आते ही हिंसा करने को तैयार हो जाते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन की चर्चाओं से मैं चिर-परिचित हूँ। मानवता के परित्राण में यह महान् योग दे रहा है। अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह—ये ही ऐसे सार्वभौम तथ्य हैं जिन पर सारा संसार टिका हुआ है। पंचशील भी इसमें समा जाते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन इन्हीं पांच तथ्यों को अणु से प्रारम्भ कर महान् में परिणत करना चाहता है। यह मानवता की महान् सेवा है। जन-जन में अहिंसा सत्य का प्रसार हो इससे बढ़कर मैं कोई सेवा नहीं मानता।

भारतवर्ष धर्म प्रधान देश था पर आज तो भारतवासियों के विचारों में नास्तिक्य और आचार में पूर्ण नास्तिक्य उपलब्ध होता है। आज तो लोगों की यह स्थिति है जिसका परिचय विष्णु पुराण में ऋषियों ने इस प्रकार दिया था—धन-संग्रह तो हमारे अशेष धर्मों का हेतु है असत्य ही हमारे जीवन व्यवहार की जय का हेतु है, सूत्र-धारण हमारे विप्रत्व का हेतु है और वेष धारण ही हमारे आश्रम का हेतु है।

३

आधुनिक युग का आन्दोलन

—तत्कालीन श्रममंत्री श्री खण्डुभाई देसाई

सत्य अहिंसा जैनधर्म का मूल लक्ष्य बिन्दु है पर आज का जीवन भौतिक चकाचौंध में से गुजर रहा है। अतः आज सत्य अहिंसा से अधिक अपरिग्रह पर बल देने की आवश्यकता है। यदि अपरिग्रह को लेकर आन्दोलन किया गया तो सत्य अहिंसा अपने आप आ जायेंगे। आज असत्य और हिंसा बढ़े हुए हैं इसका मूल कारण परिग्रह है। व्यक्ति संग्रहशील है अतः संग्रह के लिए वह सब कुछ कर लेता है। भगवान् महावीर यदि आज पैदा होते और वे आधुनिक युग की विभूति के रूप में उपदेश करते तो मैं समझता हूँ कि वे वर्तमान के भौतिक वाद को सामने रखकर उपदेश करते। अभी-अभी मैं दक्षिण का दौरा करके आया हूँ। मैंने कहा था—मार्क्स बुरा नहीं था। वह तो जीवन को सुखी बनाने आया था। पर आज यदि वह पैदा होता तो वह भी दुनिया को अहिंसा का ही रास्ता दिखाता। इसी तरह भगवान् महावीर या वैदिकों के वेद या अन्य कोई भी सम्प्रदाय सब युगानुकूल चले और इसी कारण जनसाधारण ने उनके विचारों का अनुगमन किया। अणुव्रत-आन्दोलन को भी अपने विचारों को उसी रूप में रखना चाहिए जिससे सर्वसाधारण के दिल पर वे असर कर सकें। यह खुशी की बात है कि वैसा किया भी जाता है। अणुव्रत-आन्दोलन आधुनिक युग का जनधर्म ही तो है। नैतिक और आध्यात्मिक जीवन दृढ़ होने से सब समस्याएं हल हो सकती हैं। अणुव्रत-आन्दोलन नैतिक और आध्यात्मिक जीवन निर्माण का प्रेरणा स्रोत है।

वैसे संसार कभी दोष-विमुक्त नहीं रहा और न रहेगा ही पर उसमें सन्तुलन तो रहना ही चाहिए। इसके लिए सभी अच्छे आदमी प्रयत्नशील हों

रहे हैं। आज क्या नहीं है? सब कुछ है, सिर्फ सन्तुलन नहीं है। वात, पित्त व कफ के असन्तुलन से शरीर में बीमारियां पैदा हो जाती हैं और जब तक वे सन्तुलित नहीं होते उसमें कुछ न कुछ कसर रहती ही है। पर शरीर में उन दोषों को निकालने की शक्ति होती है। वह दोषपूर्ण तत्त्वों को मल-मूत्र के जरिए बाहर निकालता रहता है। इसी तरह आज के समाज में बुराइयों को निकालते रहने की शक्ति होनी चाहिए। समाज यदि बुराइयों को स्थान नहीं देगा तो वे अपने आप मिट जायेंगी।

आज हमारी संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है। यूरोपीय सभ्यता के प्रभाव से लोग चौंधिया गए हैं। उसके सद्गुणों को अपनाने की उनमें शक्ति नहीं और दुर्गुणों को सहज ही अपना लिया जाता है। ऐसे समय में अणुव्रत आन्दोलन के द्वारा जो प्रयास किया जा रहा है, मैं उसका स्वागत करता हूं। यह और खुशी की बात है कि उसमें कतई साम्प्रदायिक बू नहीं है।

४

अणुव्रतों का अर्थ नैतिक व्यवहार

—डा. हरेकृष्ण मेहताब
तत्कालीन राज्यपाल, बम्बई

मुनि श्री नगराजजी ने असीम अनुग्रह कर मुझे अणुव्रत-आन्दोलन से भली भांति परिचित किया जिसकी स्फुट चर्चाएं कुछ वर्षों से मैं सुन रहा था। यह आन्दोलन जीवन के समस्त पहलुओं में नैतिकता एवं चरित्र का प्रशस्त निर्माण करने वाला है। यह किसी सम्प्रदाय विशेष की भूमिका पर आधारित नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को नैतिक आचरण करना चाहिए, फिर वह चाहे कोई भी क्यों न हो और उसने अपने जीवनयापन के लिए कोई भी व्यवसाय क्यों न अपनाया हो? यही अणुव्रत-आन्दोलन का अर्थ है।

जीवन में अन्तिम सफलता प्राप्त करने का नैतिक आचरण ही आवश्यक है। कुछ सीमा तक यह अवश्य होता है कि अनैतिकता (धूर्तता) को किसी मार्ग में सफलता प्राप्त होती है परन्तु समग्र रूप से नैतिकता की सच्ची विजय होती है बशर्ते कि किसी व्यक्ति के पास इसके लिए आवश्यक शिक्षण प्राप्त हो।

आज के इस आधुनिक युग में जबकि मनुष्य ने आत्मा से अपना सम्पर्क खो दिया है और अपने ही अहं के प्रभाव से निर्मित उलझनों व अन्धेरों से निकलने के लिए छटपटाता है इस प्रकार का कोई भी आन्दोलन जो मार्ग-दर्शन का आधार देता है उसका अत्यन्त स्वागत है। अणुव्रत भी इसी दृष्टि से अभिनन्दनीय है। यदि इस आन्दोलन से अल्प संख्या में भी स्त्री और पुरुष प्रभावित हो सकें तो इससे मानवता की बहुत बड़ी सेवा होगी। इस

प्रकार के आन्दोलन को अधिक संख्या में मानने वाले हों ऐसा न तो उद्देश्य होना चाहिए और न ऐसे उद्देश्य की आवश्यकता है। ऐसी प्रवृत्तियों का तत्त्व गुण में होता है न कि संख्या में। मेरी प्रार्थना है कि युवकों का ध्यान जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए नैतिक आचरण के प्रति आकर्षित हो।



५

आन्दोलन की सफलता

—श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

साधु-सन्तों की परम्परा हमारे देश में चली आती रही है। सौभाग्य से भारत की पुण्य भूमि बड़े-बड़े सन्तों को जन्म देती रही है और आज भी अनेक उच्चकोटि के सन्त विद्यमान हैं।

हमारे देश में समाज के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने और उसे पुनीत बनाने में सन्तों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। उनके उपदेश कथा-वार्ता और प्रचार से स्त्री-पुरुषों को आदर्श जीवन बिताने का प्रोत्साहन और अपनी गलतियों व बुराइयों को दूर करने की प्रेरणा मिलती है। आजकल अग्रजी पढ़े-लिखे लोगों की साधुओं में श्रद्धा नहीं रही है। उसका प्रमुख कारण यह है कि बहुतों ने साधु-वृत्ति को एक पेशा बना लिया है। केवल भगवां वस्त्र पहनकर ही वे साधु बन जाते हैं। इसीसे साधुओं की साख जाती रही है। फिर भी कहीं-कहीं ऐसे सत मिल जाते हैं जिनमें संसार के परोपकार की अदम्य शक्ति रहती है।

श्वेताम्बर जैनों के एक ऐसे ही संत आचार्य श्री तुलसी हैं जो अणुव्रत के नाम से एक पवित्र आन्दोलन चला रहे हैं। निःसन्देह यह अच्छा और हृदय को पवित्र करने वाला आन्दोलन है जिसे सब लोगों को सच्चाई के साथ अपनाना चाहिए।

हमारे समाज में भ्रष्टाचार दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। सच्चाई और ईमानदारी का मूल्य घट रहा है। खाद्य पदार्थों में दूसरी वस्तुएं मिलाना चोर बाजारी घूसखोरी व्यभिचार सब ही जारी हैं। इस आन्दोलन के जरिए, लोगों को समझाया और बताया जाता है कि इन बुरे कर्मों को छोड़ें। इस प्रकार के

लिए स्त्री-पुरुषों की सभाएं की जाती हैं। आचार्य श्री के शिष्य घर-घर घूमकर लोगों से वचन लेते हैं। सत्पथ पर चलने का व्रत सिखाते हैं और इसी प्रकार उन्हें अणुव्रती बनाकर इस नैतिक समुदाय में शरीक करते हैं।

जितने भी लोग सदाचार का व्रत लें उतना ही हमारे समाज के उत्थान के लिए लाभकारी है। मैं इस आन्दोलन का फलना-फूलना और बढ़ना चाहती हूँ।



६

राष्ट्र व संस्कृति का नव निर्माण

—श्री पुरुषोत्तमदास भार्गव

इस समाज में जहाँ वैज्ञानिक युग अपना कदम बढ़ाता चला जा रहा है वहाँ हम यह नहीं चाहते कि अपने जीवन का बहुमूल्य समय आध्यात्मिकता की ओर खर्च न करें। भारतीय संस्कृति मर्यादा त्याग प्रधान रही है और देशवासियों का आचरण भी अच्छा रहा है। चिरकाल तक जीवित रहने वाले महर्षि-महात्माओं ने भी यही कहा है कि मानव मात्र का आचरण अच्छा हो। पशुओं के समान आचरण न हो।

वैसे यह संसार गुण और अवगुण भलाई और बुराई दोनों की खान है। हम दूध लेने दुकानों पर जाते हैं। अगर हम हंस होते तो दूध को चुन लेते और पानी को त्याग देते। इसीलिए संसार के समस्त गुणों को लेने के लिए हम सदाचरणीय बनना चाहिए। परमात्मा ने जिस सृष्टि की रचना की है वहाँ भलाई के साथ बुराई भी पैदा हो गई है। लेकिन आचार्य श्री तुलसी जैसों के साथ रहकर हम जान सकते हैं कि हमें अपने जीवन में कौन-सा मार्ग अपनाना चाहिए। अगर हमें सत्पुरुष बनना है तो सदुपदेशों का ही आचरण करना चाहिए। अगर हमें अपने समाज राष्ट्र व संस्कृति का कल्याण करना है तो आचार्य श्री तुलसी के मार्ग पर चलना चाहिए।

हम अपने जीवन में अणुव्रत के द्वारा अनेकानेक बड़े-बड़े कार्य व सुधार कर सकते हैं। व्रतों के द्वारा हम अपने जीवन को विकासोन्मुख व सदाचरणीय बना सकते हैं। मानव जीवन के कल्याण के लिए पंच महाव्रतों का पालन करना आवश्यक है। आचार्य श्री तुलसी के उन शब्दों को मैं भूल नहीं सकता कि श्रद्धा और विश्वास को लेकर ही हम समाज को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर कर सकते हैं।

न औपचारिकता में बन्धकर रह गया है। सिद्धान्त यह मानते हैं—आत्मा अमर है, सब समान हैं, किसी के प्रति भी जुगुप्सा के भाव क्यों रखे जायें? यदि इस प्रकार ध्रुव रूप में हमारा विश्वास होता तो हम औपचारिकता में क्यों फंस गये होते? पर हम फंसे। हमारा दुर्भाग्य है कि अपने पूर्वजों के बताये हुए सिद्धान्त को त्रिकाल सत्य समझते हुए भी उन्हें अपने जीवन में उतार नहीं पाते। ऐसी स्थिति में अणुव्रत-आन्दोलन को मैं राष्ट्र के लिए एक उपयोगी आन्दोलन मानता हूं। अणुव्रत आन्दोलन के सिद्धान्तों पर आरूढ़ हुए बिना सामाजिक और राष्ट्रीयता उन्नत नहीं हो सकती है। यही कारण है कि ऐसे आन्दोलनों की बहुत बड़ी महत्ता और उपयोगिता है। भारत में जितने भी धर्म पैदा हुए, उनके अनुसार यहां केवल सूखे पठन-पाठन या ज्ञान की ही महत्ता नहीं रही। मैं ज्ञान को हीन नहीं मानता पर जिस ज्ञान के पीछे जीवन नहीं है, उस ज्ञान में यथार्थता नहीं। आज न एक आम्रफल खाकर ज्यादा पढ़ गई, सुस्से वे मस्त-पीसे हो गये। यहां ज्ञान जीवन में कहां उतरा? जिसने जीवन के वास्तव तत्त्वों को अपने आपमें उतारा वही सही माने में ज्ञानी है। किसी पाश्चात्य पंडित से पूछो ज्ञान क्या है? वह झट कह देगा—बुद्धि-वैभव-सम्पन्न व्यक्ति यही ज्ञानोपासना है, पर भारतीय-दृष्टि में अन्तर है। यहां तो आचारोपासना, त्याग और आत्मनिग्रह समन्वितता ज्ञान की सच्ची संपदा है। अतएव यदि कोरी बुद्धि-वैभव-संपन्नता ज्ञान ही है तो यथार्थ दृष्टि में वही ज्ञान नहीं है अज्ञान है। अणुव्रत-आन्दोलन जीवन में सच्चे ज्ञान और दर्शन को ढालना चाहता है। इसलिए यह भारतीय समाज के लिए एक आवश्यक आन्दोलन है।

भौतिक विकासमयी परिस्थितियां आज जिस कोटि पर पहुंची हुई हैं उन्हें उस कोटि तक आने में न जाने कितनी शताब्दियां और सहस्राब्दियां लगी हैं। नैतिक और आध्यात्मिक विकास का आन्दोलन भी अपना समय लेगा। पर यह है प्रगति पर। मानव के भीतर राग द्वेष मत्सर और ईर्ष्या का जो गुहा-मानव बैठा है उसे निकालने में समय तो लगेगा ही पर हमें भूल नहीं जाना है कि नर में नारायणत्व है उसको यह आन्दोलन विकास देता है। सचमुच अणुव्रत-आन्दोलन नर को नारायण बनाने का प्रथम चरण निक्षेप है। यह

मानव-जीवन में तपस्या और तितिक्षा का संचार करने वाला एक सबल उपक्रम है।

सात वर्ष पूर्व आचार्य श्री तुलसी ने इस आन्दोलन को जन्म दिया जिसके कारण हमारे वैयक्तिक जीवन में एक चमक दिखाई दी हमारी जीवनधारा नैतिक जागरण की ओर प्रवाहित हुई। इस महती कृपा के लिए हम सब उनके कृतज्ञ हैं।

भौतिक पदार्थों की चकाचौंध में सम्भव है कि कुछ लोग अपरिग्रह की भारतीय परम्परा को स्वीकार न करें, परन्तु जीवन की वास्तविकता इसी पर टिकी हुई है। आज का समाज अतिसंचय की भित्ति पर आधारित है और ऐसी स्थिति में किसी भी आदर्श की स्थापना असम्भव नहीं तो कम से कम कठिन अवश्य है। क्योंकि जब तक संचय या परिग्रह की भावना सीमित है तब तक वह विनाशकारिणी नहीं परन्तु जब वह सीमा को लांघ जाती है तो वह समाज और राष्ट्र के लिए ही नहीं बल्कि समस्त मानवता के लिए घातक सिद्ध होती है।

व्यक्ति को समाज की इकाई मानकर आचार्य श्री तुलसी द्वारा जीवन में आत्म-परिष्कार, अपरिग्रह एवं संयम का पाठ पढ़ाना सचमुच ही सराहनीय है और इस प्रकार व्यक्तिवाद से समाजवाद की ओर बढ़ेंगे तब भारत में ऐसे साम्यवाद का उदय होगा जो नैतिक तत्त्वों पर आधारित होने के कारण संसार में अतुलनीय व अद्वितीय सिद्ध होगा।

मुझे यह जानकर अत्यन्त दुःख होता है कि हमारे देश में ऐसे कमीने आदमी भी हैं जो इस प्रकार के सर्वजनहिताय आन्दोलनों व कार्यक्रमों का भी विरोध करते हैं। किन्तु उन व्यक्तियों को याद रखना चाहिए, आचार्य तुलसी और विनोबा भावे जैसे महापुरुष इस धरा पर बार-बार पैदा नहीं होंगे। हम अत्यन्त कमीने और नीच होंगे यदि उनसे लाभ न लेते हुए आलोचना की किसी ओछी वृत्ति को अपनायेंगे। यदि वे सन्त चाहें तो एकान्त में बैठकर भी अपनी आत्म साधना में लग सकते हैं क्योंकि इनमें ब्रह्म-विद्या है। पर हिमालय से कन्या-कुमारी तक पैदल घूमते हुए जो हमारा उद्बोधन कर रहे हैं उन्हें हम विरोध का उपहार दें? मुझसे कुछ एक व्यक्ति कह सकते हैं—तुम बहुत भावुक हो।

शीघ्र ही विचलित हो जाते हों। परन्तु एक भव्य व्यक्ति यह सब कैसे कह सकता है? जो हमारी पूजा, श्रद्धा और आदर के स्थान हैं उन्हें कोई अपवित्र बताने का अनधिकार प्रयत्न करे? जो जीवन-प्रेरणा के महान् दीप-स्तम्भ हैं अहिंसात्मक और नैतिक जागृति के सूत्रधार हैं उनके प्रति हमारा यह अपराध? मुझे नहीं लगता इसमें कौनसा मनुष्यत्व रह जाता है? आचार्य श्री तुलसी अपने प्रति की गई आलोचनाओं का स्पष्टीकरण करते हैं, पर प्रतिकार नहीं करते यही उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है। इस प्रकार की चेष्टाओं से समाज को सावधान रहना चाहिए। ऐसा करने वालों को अहिंसा प्रेम व स्नेह से प्रबुद्ध करना चाहिए कि आलोचना की ओछी वृत्ति से इन महापुरुषों की कोई क्षति नहीं होगी क्योंकि ये तो योगारूढ़ पुरुष हैं। अतः इनकी निन्दा करके कोई क्या पा लेगा? इन मना पर तो ऐसी तुच्छ बातों का कोई प्रभाव पड़ता नहीं। इसमें तो आलोचक की ही हानि है।



८

एक कल्याणकारी योजना

—श्री जगजीवनराम
रेल मंत्री, भारत सरकार

आज दुनिया में बुराइयां आ गई हैं। चारों ओर अनैतिकता का बोलबाला है। ऐसी स्थिति में जीवन के मूल्यों को बदलने के लिए समाज के कुछ व्यक्ति अणुव्रती बनकर नैतिकता की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। यह एक कल्याणकारी योजना है। मेरे एक मित्र धर्म में हजारों रुपयों का दान करते हैं, लेकिन चाहते हैं कि इन्कमटैक्स में से कुछ रुपए बच जायें। लोग सोचते और समझते हुए भी अनैतिकता की ओर झुक जाते हैं। एक समय था जब बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजा भी एक साधारण सन्यासी के आगे सिर झुकाते थे। लेकिन आज हमारी प्रवृत्ति बदल गई है। किसी सन्यासी में अगर भौतिक पदार्थों को प्राप्त करने की शक्ति हो तो आज लोग उनके चरणों में झुक पड़ते हैं। हम सन्यासी की इज्जत करते हैं अगर उसके पास चमत्कार हो धन बनाने की करामात हो किन्तु जहां नैतिकता का उपदेश दिया जाता हो लोग वहां पास तक नहीं फटकते चाहे वे जन-हित के लिए अपने प्राण होम कर दें। लोग यह जानते हैं कि झूठ बोलना पाप है। परन्तु जहां स्वार्थ का सवाल आया जहां यह सवाल आया कि बही के अन्दर एक गलत बात लिख देने से दस हजार रुपए मिल सकते हैं, वहां पाप और अनैतिकता का कोई ख्याल नहीं रहता। यह इस देश की बात है जहां हम धर्म की आस्तिकता का राग अलापते हैं।

अब आप उस ओर भी मुड़िए, जिन देशों को हम धर्म-प्रधान नहीं कहते। यह जानकर लोगों को आश्चर्य होगा कि यूरोप और अमेरिका में कोई आदमी ऐसा नहीं मिलेगा जो दूध में पानी मिलाता हो। हमारे यहां का एक विद्यार्थी

विलायत डाक्टरी पास करने के लिए गया। वहां के विद्यार्थी होटलों में नहीं रहते परिवारों में रहते हैं। वह एक ग्वाले के परिवार में ठहरा था। एक दिन ग्वाले की लड़की उससे कहने लगी कि आज १० पौण्ड दूध की अधिक आवश्यकता है जिसके लिए वह बड़ी हैरान थी। विद्यार्थी बोला—इसके लिए इतनी चिन्ता क्या ? दूध में १० पौण्ड पानी डाल दो। वह दौड़ी हुई अपने पिता के पास गई और कहने लगी—पिताजी ! यह कैसा भयंकर व्यक्ति है जो दूध में पानी मिलाने की बात कहता है। पिता उसकी बात सुनते ही हिन्दुस्तानी के पास आकर बोला—क्या हम थोड़े से लाभ के लिए राष्ट्र के स्वास्थ्य को बिगाड़ दें ? लड़के को तुरन्त घर से निकाल दिया गया। उस देश का ग्वाला भी नैतिकता का कितना ध्यान रखता है। हम थोड़े से लाभ के लिए देश के स्वास्थ्य को बिगाड़ने से नहीं हिच किचाते। यह कैसी नैतिकता है।

दूसरा उदाहरण हमारे यहां के एक मुसलमान मित्र का है जो बिहार एसेम्बली के सदस्य हैं। वे बी० ए० पास कर बेकार बैठे थे। एक मारवाड़ी ने उनसे कहा—यहां रक्सौल में घी बहुत होता है और वे अपने यहां से घी की खरीद फरोख्त किया करें। वे कई दिन तक घी का व्यापार करते रहे। एक बार उनको कलकत्ता के एक आढ़तिए ने पूछा कि आपको क्या लाभ रहता है ? उनको जो थोड़ा-बहुत लाभ रहता था वह साफ-साफ बतला दिया तो उस आढ़तिए ने कहा तुम क्या खाक व्यापार करोगे ? उन्होंने बताया कि घी में सांप की चर्बी की मिलावट करने से लाभ अधिक होता है। वह कहने लगे सांप की चर्बी ? हां भाई। सांप की चर्बी में क्या विष नहीं होता ? हम बाजार से जो घी लेकर आते हैं, उसमें बाघ भैंस सुअर, सांप न जाने किन-किन की चर्बियां होती हैं। मिलाने वाले वे लोग हैं जो बड़ी-बड़ी धर्मशालाएं बनाते हैं, धर्म के नाम से बड़े-बड़े चन्दे और दान देते हैं पर व्यावहारिक जगत् में वे कितनी धार्मिकता व कितना पाप करते हैं। दूसरे देशों के अनपढ़ आदमी कितनी नैतिकता की बात सोच सकते हैं। जिनके लिए हम कहते हैं, धर्म-कर्म का कोई आधार या विचार नहीं है उनमें आज कितनी नैतिकता की महानता है। मैं जब सन् १९४० में विलायत गया वहां प्रायः करके सब चीजों पर कन्ट्रोल था। वैसा कन्ट्रोल यहां पर कभी नहीं

हुआ। वहां हमें चाकलेट का कूपन मिला। हमें उसकी आवश्यकता नहीं थी। एक मोटर ड्राइवर महिला लेबर मिनिस्ट्री की वहां आया करती थी। मैंने उस महिला से कहा कि यह चाकलेट का कूपन आप ले लीजिए, आपके काम आजाएगा। वह बोली—मेरा कूपन बना हुआ है। इसका मैं क्या करूंगी ? मैंने कहा—अच्छा घर में बच्चों के लिए ही ले जाइए। वह कहने लगी उन सबका कूपन बना हुआ है। अगर आपको चाकलेट की आवश्यकता नहीं है तो कूपन फाड़ कर फेंक दें। जितना चाकलेट बच जाएगा वह विदेशों में भेजकर हम मुद्रा प्राप्त कर सकेंगे।

लेकिन हमारे यहां क्या होता है ? यदि देश में किसी वस्तु पर कन्ट्रोल हो जाए तो बड़े से बड़ा आदमी भी यह प्रयत्न करता है कि घर में अगर सात व्यक्ति हैं तो भी व्यक्तियों के कार्ड बनें। इसलिए हमें अपने जीवन के मूल्यों को बदलना होगा। आज हम अपने आदर्श से गिर गए हैं और दूसरे देशों के लोग जीवन के सच्चे आदर्श की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं। हम भौतिक वस्तुओं को जितना महत्त्व दे रहे हैं, वह न केवल हमारे आत्मिक बल्कि भौतिक नाश का भी कारण बनेगी। अस्तु, हमें अपने जीवन का पुनर्मूल्यांकन करना है।



६

अणुव्रत : मरुभूमि में एक जल-स्रोत

—श्री हरिभाऊ उपाध्याय
वित्तमंत्री, राजस्थान

जब तक मनुष्य का जीवन व्रतों के अधीन नहीं होता, उसमें तेजस्विता नहीं आती सद्गुण नहीं आते। वहां कमी दिखाई देती है। व्रत मानव को असंयम से बचाए रखने का साधन है। यदि व्यक्ति अपने जीवन को टटोल कर देखे तो उसमें जो कमियां आई हैं, वे क्यों आई हैं तो उसे पता लगते देर नहीं लगती कि उससे व्रतों का उल्लंघन हुआ है। आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत आन्दोलन व्रतों का आन्दोलन है। जीवन-व्यवहार को शुद्ध और सात्विकता का नया मोड़ देने का आन्दोलन है। नाना प्रकार के दुःखों से प्रपीड़ित मानवता के लिए यह शान्तिदायी उपक्रम है। आज के मानव-जीवन की मरुभूमि में यह एक जलस्रोत है। मैं तो क्या संसार का बड़े से बड़ा व्यक्ति यह मानेगा कि आज संसार में इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। आज विभिन्न धर्मों के आचार्यों और सन्तों का भी कुछ-कुछ ध्यान लोककल्याणकारी कामों की ओर जाने लगा है, पर आचार्य श्री तुलसी ने वर्षों पूर्व इस चरित्र-शुद्धिमूलक आन्दोलन को शुरू किया जब दूसरे इसकी चर्चा तक नहीं करते थे। यह वास्तव में बड़े गौरव की बात है। अणुव्रत-आन्दोलन के कार्य के साथ केवल भारतवर्ष में ही नहीं संसार के लोग होंगे ऐसी मेरी मान्यता है।

आज हमारा देश एक वैलफेयर स्टेट है, कल्याणकारी राज्य है। यह तो हम लोगों का कार्य है जो राज-काज में भाग लेते हैं कि देश के लोगों को सच्चे कल्याण की ओर ले जायं। हम वास्तव में आचार्य श्री तुलसी के कृतज्ञ हैं कि वे

हमारे इस कार्य को बड़ी लगन के साथ आगे बढ़ा रहे हैं। अन्य सब लोगों को उनसे प्रेरणा लेनी है। अणुव्रत-आन्दोलन सद्भावना और प्रेम सिखाता है। सद्भावना और प्रेम की बहुत बड़ी कीमत है। आए दिन के झगड़े मिटाने को लोग न्यायालयों के दरवाजे खटखटाते हैं। न्याय मिलता है। एक को सन्तोष और दूसरे को असन्तोष होना सहज है। असन्तुष्ट और आगे बढ़ता है, ऊंची अदालत में जाता है। सुप्रीमकोर्ट के बाद तो उसके लिए कोई रास्ता नहीं। यह सच है, वहां भी जो न्याय मिलता है, उससे दोनों को सन्तोष नहीं होता। पर प्रेम और सद्भावना से ऐसा होता है—दोनों को सन्तोष मिलता है। भाई-भाई में झगड़ा है। एक भाई प्रेम से दूसरे भाई को कह दे कि जो कुछ है तुम ले लो। मुझे कुछ नहीं लेना है, मैं घर छोड़कर चला जाऊंगा। तो क्या यह सम्भव है दूसरा भाई उसे ऐसा करने देगा? कभी नहीं करने देगा। यह प्रेम और सद्भावना का प्रभाव है। न्याय जिसके पक्ष में है उस पक्ष का वह अधिकारी जरूर है पर मैं न्याय से प्रेम और सद्भावना की कीमत ज्यादा करता हूं।

व्यक्तियों से मिलकर समाज बनता है, इसलिए मनुष्य की उन्नति और अवनति समाज की उन्नति तथा अवनति है। जो इस बात को भूलकर केवल समाज की सेवा का और उन्नति का विचार रखते हैं वे हवा में उड़ते हैं। व्यक्ति की तरह समाज भी कुछ नियमों के अधीन रहकर ही अपनी उन्नति और विकास करता है व कर सकता है। अतः नियमों और प्रणालियों का भी प्रभाव मनुष्य व समाज पर पड़ता है। परन्तु यदि नियम और प्रणाली बिगड़ी हुई हो और व्यक्ति अच्छे हों तो वह उनको सुधार कर अच्छा परिणाम ला सकता है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति बिगड़ा हुआ हो और नियम प्रणाली अच्छी हो तो उससे अच्छा परिणाम निकलना सहसा कठिन होता है। नियम और प्रणाली का प्रणेता भी तो आखिर व्यक्ति है। अतः व्यक्ति सब तरह से प्रधान है। ऐसा होते हुए भी व्यक्ति का जीवन समाज को समर्पित न हो तो फिर उसका व्यक्तित्व बहुतांश में निरर्थक हो जाता है।

अणुव्रत-आन्दोलन के जो चार महान् उद्देश्य हैं उनको देखने से निष्पक्ष

हो जाता है कि व्यक्ति का चरम सीमा तक पहुँचाकर उसको समाज या समष्टि को समर्पित करने का पूरा आयोजन है। यह आन्दोलन उन महापुरुषों के द्वारा प्रचलित हुआ है जिनका सम्प्रदाय एक तरह से निवृत्ति का हामी है। आधुनिक युग में आचार्य तुलसी जैन समाज में पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने निवृत्तिमार्गी मुनि और सन्तों को जन-कल्याण रूपी धर्म की प्रवृत्ति में लाने का सफल प्रयत्न किया है। मेरी समझ से निवृत्ति कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं वह प्रवृत्ति की पूरकमात्र है। सत्प्रवृत्ति ही जीवन का धर्म है। निवृत्ति की भावना से प्रवृत्ति करनी चाहिए, यह उसका मर्म है। केवल प्रवृत्ति स्वेच्छाचारी और स्वच्छन्द बन सकती है और केवल निवृत्ति अकर्मण्य व आलसी हो जाती है। केवलता पर जोर साधकावस्था में उस समय तक दिया जा सकता है जब व्यक्ति उनके परे सर्वार्थ सिद्ध न हो जाता है। तब निवृत्ति की भावना से प्रवृत्ति तो भी सहज स्वाभाविक रूप में शेष रह जाती है। वैदिक धर्म में जिसको जीवन-मुक्ति या विदेहावस्था कहते हैं वह सम्भवतया यही स्थिति है।

आजकल असन्तुष्ट प्रकृति और [illegible] की व्यापकतर अशान्ति जन-जन का बड़ा रोग है। मनुष्य स्वार्थ के पीछे इतना अन्धा हो गया है कि स्वार्थ-सिद्धि का भी सही मार्ग उसे नहीं सूझता। द्वेष, ईर्ष्या, कलह की प्रवृत्तियाँ बढ़ती पर हैं और स्नेह, दया, सहयोग, शान्ति की भावनाएं उसके आगे दब जाती हैं। इस बीमारी को आचार्य श्री तुलसी ने अच्छी तरह समझ लिया है और उसको दूर करने का जो उपाय उन्होंने सोचा है उसमें अणुव्रत-आन्दोलन एक मुख्य उपाय है। यह जीवन-परिवर्तन करने का प्रयत्न है। जीवन-परिवर्तन के लिए विचार-परिवर्तन आवश्यक है। जिन्होंने आचार्य श्री तुलसी के प्रवचन सुन या पढ़े हैं वे जानते हैं कि आचार्य तुलसी विवेक-बुद्धि को जागृत कर, समझाकर जीवन-परिवर्तन करना चाहते हैं अपने व्यक्तित्व और आदेश के बल पर नहीं। यद्यपि ये दोनों बल उनके पास भरपूर हैं। यह उनकी कार्यपद्धति की विशेषता है।

विचार-परिवर्तन से जीवन-परिवर्तन थोड़ा बहुत अपने आप हो जाता है। परन्तु वह स्थायी तभी रह सकता है जब जीवन का कार्यक्रम भी वैसा बना दिया

भाव। विचार और भावना के परिवर्तन की सफलता व सार्थकता जीवन-परिवर्तन में है।

मैं अणुव्रत-आन्दोलन को इस महान् परिवर्तन का एक बड़ा साधन मानता हूँ और मुझे विश्वास है कि आचार्य श्री तुलसी जैसे महान् व्यक्ति का परिश्रम इसको सफल बनाए बिना न रहेगा।



१०

यह हलाहल कौन पियेगा?

—श्री विष्णु प्रभाकर

आज संसार में एक बड़ी विचित्र बात देखने में आती है। हम पुराणों के जिस देवासुर संग्राम की चर्चा सुनते थे वह आज प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। एक ओर मनुष्य विज्ञान की प्रगति के नाम पर विनाशकारी यन्त्रों की खोज में पागल हो रहा है, दूसरी ओर वही मानव उनसे त्राण पाने के उपाय सोचने में व्यस्त है या कम से कम वह इनका उपयोग अपने कल्याण के लिए करना चाहता है, विनाश के लिए नहीं। एक साथ घृणा और सहयोग के मार्ग पर चलता हुआ मानव आज कैसे आ गया है। जैसे अनन्त शक्ति की खोज में वह अशान्त होकर शान्ति की पुकार लगा रहा है। देवासुर-संग्राम में जो स्थिति तब हुई थी जब सागर से हलाहल का जन्म हुआ था वही स्थिति आज दिखाई देती है। अमृत की खोज में जैसे उसके हाथ में हलाहल ही आ गया है। इस हलाहल के अग्नि-दाह में चराचर जल रहा है, लेकिन शंकर का कहीं पता नहीं लग रहा है? न जाने किस दिन उस नीलकण्ठ का उदय होगा और तभी यह मानवता त्राण पा सकेगी और तभी अमृत का उदय होगा उससे पहले नहीं।

आज का मानव स्थिति की भयंकरता न समझता हो ऐसी बात नहीं बल्कि ऐसा मालूम होता है कि आज का प्रत्येक प्राणी इस स्थिति को समझ रहा है और शंकर की खोज में पागल है। लेकिन युग-युग में अन्तर होता है। देवासुर संग्राम के समय एक शंकर प्राणीमात्र की रक्षा कर सकने में समर्थ थे। लेकिन आज जो हलाहल है वह किसी एक शंकर के वश का नहीं। उसके लिए तो शंकर की वह शक्ति जन जन को अपने भीतर प्राप्त करनी होगी। बहुत से

मनीषी इस तथ्य को समझ रहे हैं और अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न में भी लगे हैं।

आज इस शान्ति और अशान्ति के संघर्ष के पीछे एक और संघर्ष है। वह इससे अलग हो यह बात नहीं बल्कि इसीका परिणाम है। वह है—आचार का संघर्ष। हमें ऐसा लगता है कि जो समाज में रहता है। उसका मुख्य ध्येय अपनी सेवा करना नहीं बल्कि समाज की सेवा करना । समाज की सेवा में ही उसकी अपनी सेवा है। नारायण ही तो नर अर्थात् मानव के अन्दर रहते हैं। उनकी सेवा करने के लिए मनुष्य की सेवा आवश्यक है और मनुष्य की सेवा के लिए स्वार्थ का त्याग परम आवश्यक है। इस एक बात को समझ लेने पर दुराचार और भ्रष्टाचार का कहीं प्रश्न ही नहीं रहता। लेकिन यह बात जितनी सरलता से कह दी गई, क्या वास्तव में उतनी सरल है? विनोबा आज व्यक्तिगत मिलकियत की भावना को समाप्त करने के लिए भू-दान आन्दोलन का संचालन कर रहे हैं। वे मानते हैं कि केवल भूमि की मिलकियत मिटाने से काम पूरा नहीं होता, कारखाने और मकानों की मिलकियत भी समाप्त होनी चाहिए। हम तो यह कहेंगे कि 'मेरा है' इस एक भावना की मिलकियत ही समाप्त होनी चाहिए। समाज में ऐसे परिवर्तन लाने के लिए कई मार्ग हैं। एक मार्ग विनोबा का है—मैं परिवर्तन लाना चाहता हूँ। प्रथम हृदय-परिवर्तन, फिर जीवन-परिवर्तन और बाद में समाज में परिवर्तन लाना चाहता हूँ। इस तरह से त्रिविध परिवर्तन, त्रिमुख इन्कलाब मेरे मन में है।

इसीसे मिलता-जुलता एक मार्ग आचार्य श्री तुलसी का है। वे भी समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं—अणुव्रत के द्वारा। अणुव्रत क्या है? परमाणु बम के और अन्य कृत्रिम चन्द्रमा के युग में उनका मूल्य क्या है? लेकिन उनका कहना है कि व्यक्ति यदि प्रतिज्ञा कर लेता है कि वह रिश्वत नहीं लेगा या दूसरे के साथ ऐसे काम नहीं करेगा जो समाज को हानि पहुँचाने वाले हैं तो निःसन्देह समाज को प्रगति के पथ पर आगे ले जायगा। हमारा विचार उनकी उपयोगिता और अनुपयोगिता पर फतवा देने का कतई नहीं है जितना इस बात को

समझने का कि वास्तव में क्या काम इतना आसान है जितना हम समझते हैं ? इसकी जड़ें क्या कहीं आसपास ही हैं ? गहरी होकर समाज के अन्तस्तल्ली पाताल में तो नहीं उतर गईं ? लगता ऐसा है कि जड़ें कहीं और हैं। क्या मनुष्य मात्र दुराचारी हो गया है ? वह सुख चाहता है ? सुविधा और सुरक्षा चाहता है और उसी के प्रयत्न में वह दूसरों को दुःख देता है और दूसरों पर आक्रमण करता है। सब ऐसा ही करते हैं और परिणाम यह होता है कि चारों ओर दुःख और आक्रमण ही दिखाई देता है। शान्ति की पुकार केवल हवा में रह जाती है।

युद्ध के बाद या किसी भी संघर्ष के बाद मनुष्य आचरणहीन क्यों हो जाता है ? क्या कभी हमने सोचा कि यह सब इसलिए होता है कि उसका अपने में विश्वास नहीं रहता। अपने में विश्वास न रहने का अर्थ है कि वह मानवता में विश्वास खो बैठता है। एक घटना मुझे याद आती है। युद्ध के बाद एक बहुत बड़े अधिकारी लन्दन गए थे। वे वहां हाईकमिश्नर के दफ्तर में उनसे मिलने पहुंचे। जैसाकि होता है उन्होंने अपना कोट और टोप उतारकर बाहर ही टांग दिया। उसी समय अन्दर से एक सज्जन आ रहे थे। वे अंग्रेज थे। उन्होंने उस भारतीय भाई से कहा कि अब इंग्लैण्ड में वह पहले जैसी स्थिति नहीं रह गई है। आप अपना कोट अपने साथ अन्दर ले जाइए। शायद कोई उठाकर ले जाए। यह उस लन्दन की बात है जहां की ईमानदारी कहावत बनकर रह गई है। लेकिन यह स्वाभाविक ही है। युद्ध की परिस्थिति ने मनुष्य को वह सब करने पर विवश कर दिया जो वह करना नहीं चाहता था।

हमारे देश में भी रिश्वत और भ्रष्टाचार का जो इतना जोर है वह क्या इसलिए है कि ऐसा करना मनुष्य का स्वभाव है ? क्या वह इसलिए नहीं है कि मनुष्य ऐसा करने के लिए परिस्थितियों द्वारा मजबूर कर दिया गया है ? हमारा विश्वास है कि मनुष्य ऐसा नहीं चाहता। हमारा देश अविकसित देश है। इसकी आर्थिक स्थिति डांवाडोल है। एक लम्बे संघर्ष के बाद उसने स्वतन्त्रता पाई है और अपेक्षाकृत अर्थात् रक्तहीन क्रान्ति होने पर भी उसे

काफी भयंकर दृश्य देखने पड़े हैं। इन सब कारणों से यह जीवन की राह भूल बैठा है। यदि हम उसे फिर से अपने आपको पा लेने में मदद करना चाहते हैं तो हमें जड़ पर चोट करनी होगी। हमें एक ओर तो उसकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन उपलब्ध कराने होंगे दूसरी ओर उसे अपनी आध्यात्मिक शक्ति की याद भी दिलानी होगी।

यह शुभ लक्षण है कि हमारे देश में दोनों ओर से प्रयत्न हो रहा है। भारत सरकार अनेक उद्योगों से भारत की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयत्न कर रही है। भले ही ये प्रयत्न अभी छोटे लगते हों लेकिन उनका परिणाम बहुत बड़ा होने वाला है। उसी के साथ एक दूसरा प्रयत्न भी हमारे देश में हो रहा है। वह है—हमारे सन्तों द्वारा। विनोबा उनमें एक हैं आचार्य तुलसी उनमें दूसरे हैं। आचार्य तुलसी मनुष्य को याद दिलाने में प्रयत्नशील हैं कि उसकी आध्यात्मिक परम्परा क्या है और उसके पास कितनी शक्ति है ? उसे उस शक्ति को भूलना नहीं है। वे प्रलोभनों से बचने के लिए प्रतिज्ञा करवाते हैं और इन प्रतिज्ञाओं का नाम है अणुव्रत। बहुत से लोगों का इस प्रणाली से मतभेद हो सकता है लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि अणुव्रत आन्दोलन एक ऐसा आन्दोलन है, जिसमें असीम शक्ति भरी हुई है और देश की औद्योगिक और वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ उसका होना आवश्यक है। ऐसे आन्दोलनों के अभाव में विज्ञान विश्व को नष्ट कर देगा। विज्ञान में गति है, दिशा नहीं। दिशा के लिए आत्म-ज्ञान आवश्यक है।

लेकिन कभी-कभी मन में एक सन्देह उत्पन्न होता है कि क्या आज के समाज में उन व्यक्तियों को, जो भविष्य में भ्रष्टाचार से बचने की प्रतिज्ञा लेते हैं, भ्रष्टाचारी न मान लिया जाएगा। हमारे सामने एक उदाहरण है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के ठीक बाद एक व्यक्ति के मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि अब उसका देश स्वतन्त्र हो गया है, अब उसे रिश्वत नहीं लेनी चाहिए। उसने अपनी प्रतिज्ञा की अपने अफसरों को भी सूचना दे दी। यही नहीं उसने यह भी बताया कि किस तरह से सरकार का रुपया व्यर्थ जाता रहा है और किस तरह से उसके विभाग के अधिकारी रिश्वत लेते हैं और उसने भी किस

होकर एक बार रिश्वत ली थी। अधिकारियों ने उसकी किसी भी बात की ओर ध्यान नहीं दिया, बस एक बात पकड़ी कि उसने ही एक बार सही उसने रिश्वत तो ली और इसी बात पर उसको बर्खास्त कर दिया गया। कानूनी दृष्टि से यह सब ठीक ही हुआ हो लेकिन इस संसार में क्या इसी दृष्टि के सहारे चला जा सकेगा? क्या पश्चाताप का दण्ड इसी तरह भुगतना होगा?

मुझे प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार दास्तोवस्की के एक पात्र का वाक्य याद आता है—'मैंने अपने जीवन में एक ही पाप किया है कि मैंने अपने पाप स्वीकार कर लिए हैं।' क्या भारत में इसी तरह के व्यक्तियों की यही कहानी होगी? अभी पिछले दिनों 'फैमिली ऑफ मैन' की फोटो प्रदर्शनी अमेरिका की ओर से हुई थी, उसमें बहुत सुन्दर वाक्य थे। जज के लिए किसी ने बहुत ही सुन्दर लिखा था। उसका अर्थ था कि हमें ऐसे न्यायाधीशों की जरूरत है जो न्याय करने वाले हों लेकिन इतने न्यायी न हों कि मनुष्य की कमजोरियों को ही भूल जायें। न्याय के आसन को इस बात से समझ लेना है कि न्याय अन्धा नहीं होता उसका उद्देश्य मनुष्य को सुधारना है।

अभी हम प्रयोग की अवस्था में हैं। इसलिए निश्चय से तो कुछ नहीं कहा जा सकता लेकिन यह आन्दोलन मनुष्य के खोए हुए आत्म-विश्वास को जगा सके तो निस्सन्देह बहुत ही शीघ्र जब हमारा देश आर्थिक दृष्टि से भी विकसित हो जाएगा तब हम एक सुदृढ़ राष्ट्र के रूप में विश्व-परिवार में अपना स्थान ग्रहण कर सकेंगे। हम यह जान-बूझकर कहते हैं और इसलिए कहते हैं कि विश्व के अधिकांश देशों में एक भौतिक शक्ति हो मनुष्य को उन्नत करने का अथक प्रयत्न कर रही है लेकिन वह शक्ति अधूरी है। इसको पूर्ण करने वाली शक्ति आध्यात्मिक है और यह सौभाग्य भारत को ही प्राप्त है कि इस शक्ति को खोज निकालने में आचार्य विनोबा और आचार्य तुलसी हमारे बीच काम कर रहे हैं।

अणुव्रत-आन्दोलन का एक और लाभ है और वह लाभ बहुत सुन्दर है। आचार्य तुलसी जैनधर्म में ही एक शाखा के आचार्य हैं। लेकिन इस आन्दोलन के द्वारा वे उपशाखा और शाखाओं की तो क्या मूल धर्म की सीमाओं को लांघ

पर भारत के दूसरे धर्मों हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, ईसाई आदि के बहुत पास आ गए हैं। प्रत्येक क्षेत्र में उनके अनुयायी हैं। यह बहुत शुभ लक्षण है और भारत की परम्परा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का ज्वलन्त प्रमाण है। भले ही इन सब बातों का तुरन्त परिणाम न निकले लेकिन यह हमारी परम्परा को जीवित रखने वाली है।

११

अणुव्रत : धर्म और कर्म का समन्वय

—श्री गोपीनाथ 'अमन'
अध्यक्ष, जन सम्पर्क समिति दिल्ली

संसार की बहुत-सी समस्याएं धर्म और कर्म को अलग-अलग समझने से पैदा हुई हैं। आज हम देखते हैं कि मन्दिरों और मस्जिदों में काफी भीड़ भरी रहती है परन्तु हमारे सामूहिक जीवन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पूजा करली या भगवान् से अपने पापों के लिए क्षमा याचना कर ली परन्तु मन्दिरों से निकलकर यह समझ लिया कि भगवान् की बात तो भगवान् के साथ है और दुनिया की बात दुनिया के साथ। इसी भूल के कारण धर्म बदनाम हो रहा है। सच्चे धर्म का सम्बन्ध तो हमारे सारे जीवन के साथ है। भगवान् मन्दिर में भी देखते हैं और दुकान पर भी। बस इतनी-सी बात है जिसे समझने और जीवन में धारण कर लेने की आवश्यकता है।

अणुव्रत-आन्दोलन हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखता है। हमें बार बार यह याद दिलाता है कि हमें अन्दर देखने की बड़ी जरूरत है। मैं मानता हूं कि इसके नियम कठिन हैं परन्तु कठिन तो ऐसी सारी बातें होती ही हैं। यदि एक साधारण-सी फांस लग जाए तो उसे निकालने में भी दर्द होता है फिर जब अन्दर विकार भरा हो तो उसे निकालने में तो कठिनाई अवश्य ही होगी। परन्तु ऐसे वीर भी हमारे देश में हैं जो इस वेदना को सह जाते हैं।

लोग कहते हैं कि जब हमारे चारों तरफ बेइमानी, ब्लैकमार्केटिंग और छल-कपट का व्यवहार है तो हम इससे कैसे बचें? इसका सीधा-सा उत्तर यह है कि यह शक्ति सच्चे धर्म के द्वारा मनुष्य में आती है। कर्म के बिना धर्म नहीं

हो सकता और इसी प्रकार धर्म के बिना कर्म नहीं हो सकता। कर्म का मूलाधार धर्म है और धर्म का द्योतक कर्म।

यह बात और समझ लेने की है कि प्रारम्भ में जितनी कठिनाई होती है उतनी अभ्यस्त होने के पश्चात् नहीं रहती। प्रकृति का यह साधारण नियम है कि अभ्यास के साथ-साथ सहनशीलता बढ़ती जाती है। इसलिए पहली मंजिल पर जो कठिनाइयां बड़ी गम्भीर होती हैं, वे आगे चलकर साधारण रह जाती हैं। यह बात दूर तक पहुंचती है। प्रश्न यह उठता है कि सुख और आनन्द है कहां ? यदि वह बाह्य वस्तुओं में है तब तो किसी प्रकार इन बाह्य वस्तुओं को प्राप्त कर लेना ही ध्येय हो सकता है परन्तु यदि उसका स्थान मनुष्य के हृदय में है तो फिर बाह्य वस्तुओं के पीछे दौड़ना और येन केन प्रकारेण उन्हें प्राप्त करने का साहस करना जीवन का लक्ष्य नहीं रह जाता। अणुव्रत-आन्दोलन मनुष्य को जीवन का सच्चा लक्ष्य बताता है। यदि हम अपनी आकांक्षाएं सीमित रखें तो हमारा जीवन नियमबद्ध हो सकता है और हम 'मा गृध कस्यस्विद्धनम्' के पुनीत आदर्श पर चल सकते हैं और यदि अपनी वासनाओं को खुली छूट दे दी जाए तो फिर हमें दूसरों के अधिकार पर अवश्य छापा मारना पड़ेगा।

अपनी वासनाएं घटाओ जीवन को नियमबद्ध बनाओ, दूसरों के अधिकारों का विचार रखो इन बातों में अणुव्रत-आन्दोलन के मूल सिद्धान्त आ जाते हैं। साम्यवाद जो कुछ मार-काट के द्वारा अथवा तानाशाही राज्य के द्वारा करना चाहता है अणुव्रत-आन्दोलन उस कार्य की पूर्ति मनुष्य की स्वेच्छा से चाहता है। साम्यवाद इच्छाओं को बढ़ाने में देश या समाज की उन्नति मानता है, यहां हमारी सभ्यता से उसका टकराव स्पष्ट हो जाता है। वे लोग बड़ी भूल करते हैं जो साम्यवाद के सिद्धान्तों को तो देखते हैं, परन्तु साधनों को नहीं देखते। साधनों को सिद्धान्तों से पृथक नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि अणुव्रत-आन्दोलन में साधनों पर भी उतना ही बल दिया गया है, जितना कि सिद्धांतों पर।

आदर्श समाज की स्थापना आत्म-संयम के द्वारा ही हो सकती है। अणुव्रत

में इसी का सन्देश है। इसकी जड़ें हमारी भारतीय सभ्यता में है। जो काम राजनीतिक दलों से नहीं हो सकता वह भूदान और अणुव्रत जैसे आन्दोलनों से ही सकता है। निश्चित है कि इन नियमों पर चलने वाले वर्तमान अवस्था में तो थोड़े ही मनुष्य हो सकते हैं परन्तु वातावरण ज्यों-ज्यों स्वच्छ होता जाएगा त्यों-त्यों अणुव्रतधारियों की कठिनाइयां कम होती जाएंगी। भविष्य अन्धकार मय नहीं है यह मेरा निश्चय है। मैं मानता हूँ कि धर्म और कर्म के बीच जो एक खाई बन गई है वह दूर हो जाएगी और एक दिन यह विश्वास मनुष्य जाति काय रूप में परिणत करेगी कि जो धर्म है वही कर्म है। धर्म का विरोध साम्यवाद ने जिस भूल म किया है वह उसकी वर्तमान विकृत अवस्था है। अणुव्रत-आन्दोलन जैसा आन्दोलन इस भूल का जवाब ही नहीं वरन वह उसे दूर भी कर सकता है।

•

१२

राष्ट्र उन्नयनमें अणुव्रत का योग

—श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

सम्पादक, सम्पदा

किसी देश की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि उसकी चतुर्मुखी उन्नति हो। जब किसी देश ने राजनैतिक स्वाधीनता और उन्नति के लिए प्रयत्न किया है, तब केवल एक दिशा में ही प्रयत्न नहीं हुआ है। शिवाजी ने जब स्वातन्त्र्य-युद्ध प्रारम्भ किया उससे पहले समर्थ रामदास अपनी उद्बोधक वाणी में जनता में सामाजिक और सांस्कृतिक जागृति का प्रचार प्रारम्भ कर चुके थे। पंजाब में सिक्खों में राजनैतिक अभ्युत्थान से पहले उनके गुरु अमृतमयी किन्तु प्रभावशाली वाणी में धार्मिक सांस्कृतिक और सामाजिक जागृति का मूलमन्त्र जनता के हृदय तक पहुँचा चुके थे। नवीन भारत के स्वातन्त्र्य आन्दोलन से पूर्व राजा राममोहन राय और ऋषि दयानन्द सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न कर चुके थे। टर्की के पुनर्निर्माण के समय कमालअतातुर्क राजनैतिक शक्ति ग्रहण करते ही सामाजिक और सांस्कृतिक नव चेतना में उत्साहपूर्वक लग गया। अफगानिस्तान या अन्य मुस्लिम देशों की जागृति केवल राजनैतिक जागृति तक सीमित न रही सामाजिक कुरीतियों का निवारण और शिक्षा-प्रसार भी उसके विशेष अंग रहे। सारांश यह है *कि किसी देश की उन्नति के लिए केवल एक क्षेत्र में* एकांगी उन्नति बहुत सफल नहीं होती। सभी क्षेत्रों में सर्वांगीण उन्नति आवश्यक होती है। मानव आत्मा के प्रबल रूप की यदि उपेक्षा करदी जाए तो वह उन्नति स्थायी नहीं रह सकती।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत को जिन गम्भीर समस्याओं का सामना करना पड़ा वे अनेक प्रकार की थीं। देश के नेताओं ने अत्यन्त धैर्य और साहस

के साथ उनका समाधान करने का प्रयत्न किया। शरणार्थियों का पुनर्वास, अन्न-संकट का निवारण, औद्योगिक आत्म-निर्भरता तथा विभिन्न भौतिक अभावों की पूर्ति के लिए समस्त देश पंचवर्षीय योजनाओं के नाम से प्रयत्नशील हो उठा। इन सब प्रवृत्तियों का परिणाम भी सन्तोषप्रद प्रकट हो रहा है। इनकी सफलताएं इतनी प्रत्यक्ष हैं कि उनका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु इन सफलताओं के होते हुए भी देश के नेता और विचारक यह अनुभव कर रहे हैं कि हमारी गति और भी तेज हो सकती थी यदि हमारे नैतिक सांस्कृतिक और सामाजिक चरित्र का धरातल ऊंचा हो जाता। यह ठीक है कि कृषि और उद्योग का उत्पादन बढ़ गया है रेलों व सड़कों का विकास हो गया है और राष्ट्रीय आय बढ़ गयी है किन्तु इसके साथ-साथ नैतिक चरित्र का विकास नहीं हो रहा है। हमारा राष्ट्रीय चरित्र कुछ विचारकों की सम्मति में गिरता जा रहा है। आधुनिक योजनाओं और सामाजिक विकास के कार्यों में जिस उन्नत चरित्र की अपेक्षा है, उसकी नागरिकों में कमी है। एक राज्य के उद्योगमंत्री ने इन पंक्तियों के लेखक से कहा था कि मैं तो उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की सफलता को अत्यन्त सन्देह से देखता हूं। जब तक सरकारी कर्मचारियों और नागरिकों का नैतिक चरित्र ऊंचा न होगा उनमें ईमानदारी की भावना पैदा न होगी, सरकारी उद्योग सफल नहीं हो सकते और आज हमारी स्थिति इस दृष्टि से लगातार कमजोर होती जा रही है। उन्होंने अत्यन्त दुःख और निराशा भरे शब्दों में मुझसे फिर कहा था कि 'राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद हमारी दृष्टि ही बदल गई है। पैसा ही आज हमारा एकमात्र लक्ष्य हो गया है। नैतिकता और आध्यात्मिकता का स्थान भौतिकवाद ले रहा है। उच्च आदर्श और ऊंचे विचार हमसे दूर होते जा रहे हैं। मैं नहीं कह सकता कि आर्थिक योजनाओं पर बहुत अधिक बल देने के कारण हमारी यह दृष्टि बदली है अथवा यूरोपीय शिक्षा-दीक्षा के कारण।

देश और समाज के नेता स्वाधीनता प्राप्ति के बाद उपस्थित भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में इतने व्यस्त हो गए कि सामाजिक और नैतिक स्तर ऊंचा करने की ओर न उन्हें समय मिला और न शायद इधर ध्यान ही रहा।

श्री जयप्रकाशनारायण के शब्दों में 'जीवन-स्तर' को उन्नत करने की लालसा भावना ने हमें इतना अभिभूत कर लिया कि हम नैतिक और सांस्कृतिक उन्नति को भूल गए। संस्कृति के नाम से आज जिस कला संगीत और नृत्य को प्रधानता दी जा रही है वह नैतिक धरातल को ऊंचा करने के बजाय शायद गिरा ही रही है। ऐसे समय आचार्य श्री तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन आशा की एक नई किरण के रूप में हमारे सामने आया है।

आचार्य श्री तुलसी के अणुव्रत-आन्दोलन का किसी सम्प्रदाय या धर्म विशेष से सम्बन्ध नहीं है। इसका सम्बन्ध तो मानव-धर्म से है। यह आन्दोलन जहां एक नागरिक के व्यक्तिगत जीवन को ऊंचा करता है वहां पारिवारिक सामाजिक और राष्ट्रीय चरित्र को बहुत ऊंचे धरातल पर ले जाने वाला है।

इस अणुव्रत-आन्दोलन का लक्ष्य जाति वर्ण देश और सम्प्रदाय का भेद भाव न रखते हुए मनुष्य मात्र को आत्म-संयम की ओर प्रवृत्त करना है। आचार्य श्री तुलसी के शब्दों में "अणुव्रत-आन्दोलन जीवन की आध्यात्मिक और नैतिक सिंचाई के लिए योजना है। इसका लक्ष्य सामाजिक और राजनैतिक उन्नति से बहुत अधिक व्यापक है। यह आध्यात्मिक उन्नति है परन्तु उसकी यह आध्यात्मिक उन्नति संसार से वैराग्य नहीं सिखाती। यह तो सर्वतोमुखी उन्नति है। इसमें अपना हित व दूसरों का हित भी सम्मिलित है। विभिन्न अणुव्रत देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले नागरिकों के धार्मिक और नैतिक जीवन को ही ऊंचा नहीं करते वे अपने आजीविका कार्य को भी ऐसे व्यावहारिक और उपयोगी निर्देश देते हैं जिनसे समस्त राष्ट्र का न केवल नैतिक धरातल ऊंचा होता है, किन्तु वे नागरिक को समस्त देश के लिए अधिक उपयोगी अधिक समर्थ और अधिक प्राणवान् बना देते हैं। एक साधारण नागरिक के लिए निरपराध प्राणी की संकल्पपूर्वक हिंसा न करने आत्महत्या न करने मद्य पान न करने ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करने उपवास करने और मांस न खाने आदि के व्रत जहां वैयक्तिक उन्नति के कारक हैं वहां किसी को अस्पृश्य न मानने, किसी भी हिंसात्मक दल में सम्मिलित न होने और अधीनस्थ कर्मचारी या मजदूर से भारी काम न लेने व्यापार में कूटतोल न करने जालसाजी न करने

मिथ्या विज्ञापन न करने और स्वार्थ लोभ या द्वेषवश कोई समाचार या टिप्पणी प्रकाशित न करने, चोरबाजारी या बिना टिकट रेलयात्रा न करने और किसी व्यापारिक चीज में मिलावट न करने आदि के बीसियों व्रत सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से अपराध वृत्ति को कम करने में सहायक होंगे। सगाई, विवाह प्रसंग में कोई ठहराव न करने, दहेज आदि के प्रदर्शन में भाग न लेने, जुआ शराब छोड़ने, एक पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह न करने व वेश्यागमन न करने आदि के व्रत हमारे समाज को बहुत ऊंचा बना देंगे। आज के घोषित समाज वाद की स्थापना के लिए कुछ व्रत बहुत महत्वपूर्ण हैं। प्रतिवर्ष सौ मन से अधिक कपड़ा न बेचने, सरकारी कर की चोरी न करने, राज्य द्वारा नियत दरों से अधिक ब्याज न लेने और संगृहीत पूंजी के तौर पर एक लाख से अधिक रुपए न रखने के व्रत—इसी तरह के व्रत हैं। इन उल्लिखित व्रतों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अणुव्रत-आन्दोलन कितना व्यापक व कितना उपयोगी है और राष्ट्र के सभी वर्गों और व्यक्तियों को किस तरह प्रभावित कर सकता है।

आज के औद्योगिक युग में जब हमारा देश उन्नति की दौड़ में अन्य देशों का मुकाबला करना चाहता है, यह आवश्यक है कि हम सर्वांगीण उन्नति के आधारभूत मूलतत्व नैतिक और सामाजिक चरित्र की उपेक्षा नहीं करें। इसकी उपेक्षा करके हम जो भौतिक उन्नति करेंगे, वह खोखली, कमजोर और अस्थायी होगी। स्वस्थ चरित्र और उन्नत विचार से युक्त नागरिक ही किसी देश को स्वस्थ और बलवान् बनाते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन के विभिन्न अंग इसी दिशा में परम सहायक सिद्ध होंगे। सामाजिक और नैतिक चेतना के बिना राष्ट्रीय आत्मा कुण्ठित ही पड़ जाएगी। समग्र राष्ट्र जन की उन्नति के लिए अणुव्रत परम आवश्यक है। डॉ॰ राधाकृष्णन् के शब्दों में 'आज हमारा जीवात्मा सोया हुआ है, आत्म-बल का अभाव है। यह आन्दोलन हमें आत्म बल की ओर ले जाएगा।

●

१३

नव निर्माण और नैतिकता

—श्री रामलाल वर्मा
जनसम्पर्क अधिकारी दिल्ली प्रशासन

स्वतन्त्र भारत के नव निर्माण में वे सभी साधन प्रयोग में लाए जा रहे हैं जो वर्तमान वैज्ञानिक युग में हमें प्राप्त हैं। देश भर में समृद्धि के लिए आवश्यकतानुसार छोटी-बड़ी योजनाएं चल रही हैं। कुल मिलाकर हम भौतिक प्रगति की ओर जा रहे हैं। यह कहा जा सकता है कि अगर कोई आकस्मिक विपत्ति न आ पड़े तो दस वर्ष में देश की काया पलट जाएगी। शिक्षा स्वास्थ्य पानी, बिजली मकान जीविका इत्यादि जीवन की सभी मुख्य सुविधाएं किसी न किसी अंश में सब नागरिकों को मिल जायेंगी। यह पाकर भी क्या हमें वह बहुमूल्य वस्तु प्राप्त हो सकेगी जिसे मन या आत्मा का सन्तोष कहते हैं।

ऊपर से देखने में ऐसा मालूम होता है कि यह प्रश्न कोई दार्शनिक प्रश्न है और इसका सम्बन्ध धर्म या अध्यात्मवाद से है। वास्तव में ऐसा नहीं है। आमतौर से हम धर्म और दर्शन को अपने प्रतिदिन के जीवन से कुछ अलग मानते हैं। अगर हमारी यह धारणा ठीक मानली जाए तो जो प्रश्न मैंने ऊपर उठाया है उसका धर्म तथा अध्यात्मवाद से सम्बन्ध नहीं रहता और यदि यह माना जाए जैसाकि मेरी राय में मानना चाहिए कि धर्म और दर्शन हमारे प्रतिदिन के जीवन प्रवाह से कोई अलग वस्तु नहीं है तो मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि यह प्रश्न निःसन्देह हमारे धर्म से सम्बन्धित है।

किन्तु धर्म का अर्थ मजहब या सम्प्रदाय नहीं। हमें धर्म का मौलिक अर्थ समझना होगा और वह है—कर्तव्यपरायणता। कर्म करने के लिए कुछ व्यवस्था

और मर्यादा आवश्यक है। यही व्यवस्था और मर्यादा हर समाज का आधार होती है। सच तो यह है कि स्वयं मानव समाज का यही आधार है। इस व्यवस्था और मर्यादा के पीछे दो तरह की शक्ति होती है। एक राज्य का नियम और विधान दूसरी नैतिकता। राज्य का नियम और विधान भी देश, काल और समाज के अनुरूप बनाया जाता है और नैतिकता पर भी आधारित होता है किन्तु कभी और कहीं इसका अपवाद भी हो सकता है। नैतिकता भी समयानुसार बदलती-बदलती रहती है किन्तु नैतिकता का मूल सिद्धान्त कभी नहीं बदलता।

क्या संसार में कभी कोई ऐसा समय आ सकेगा जब मानव समाज में सत्य अहिंसा प्रेम सेवा त्याग और तपस्या का मूल्य न रहे? यह तो हो सकता है और हो रहा है कि मानवता के इन सिद्धान्तों का मूल्य कुछ लोगों की दृष्टि में घटता-बढ़ता रहे। यह भी हो सकता है और हो रहा है कि बहुतों के जीवन में इन सिद्धान्तों का या नैतिकता का अभाव हो जाए, किन्तु इनका मूल्य कम नहीं हो सकता। क्योंकि रोशनी तो सदा रोशनी ही रहेगी। वह अन्धेरा नहीं बन सकती। रोशनी का अभाव ही तो अन्धेरा होता है।

अब प्रश्न यह है कि नैतिकता का हमारे प्रतिदिन के जीवन से क्या सम्बन्ध है? इसका उत्तर बहुत ही स्पष्ट है। हमारे जीवन और काम का कोई भी क्षेत्र हो घर, दफ्तर, बाजार, खेत कारखाना इत्यादि हर जगह हमसे आशा की जाती है कि हम किसी न किसी प्रकार नियमबद्ध होकर सुचारु रूप से काम करें। ईमानदारी बरतें। किसी को जानबूझकर हानि न पहुँचावें। स्वार्थ सिद्धि न करें बल्कि दूसरों की सहायता और सेवा करें। इसी को सद्विचार और सदाचार कहते हैं और यही नैतिकता है। सारे समाज या राष्ट्र के प्रसंग में नैतिकता की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। क्योंकि काम का क्षेत्र जितना बड़ा होगा उसी के अनुसार काम करने वाले में सामर्थ्य भी चाहिए और उतनी ही अधिक कार्यकुशलता भी चाहिए। बड़े क्षेत्र में काम करने वाला भूल करे या मर्यादा भंग करे तो उसका परिणाम उस क्षेत्र से सम्बन्धित सभी के लिए बुरा होता है। तभी तो यह बात है कि जिनके हाथों में समाज का नेतृत्व

होता है, उन्हें हम नैतिकता की कसौटी पर सख्ती से परखते हैं।

परन्तु हमें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि जहां राजसत्ता या धन सम्पन्नता हो केवल वहीं नैतिकता की आवश्यकता है या कि नैतिकता केवल साधु-सन्तों की सम्पत्ति है और जनसाधारण को नैतिकता का पालन करने की जरूरत नहीं। राजसत्ता समाज के हित और कल्याण के लिए होती है और धन-शक्ति भी है तो इसीलिए मगर सब जानते हैं कि ये दोनों शक्तियां मनुष्य को नैतिकता से हटाने में सहायक होती हैं। इसमें किसी का कोई दोष नहीं। इन शक्तियों का स्वभाव ही ऐसा है किन्तु हम सौभाग्य से लोकतन्त्रात्मक राज्य और समाज में रह रहे हैं जहां जनता को जनार्दन माना गया है। जनता नाम है देश के नागरिकों के समूह का। तो ऐसे समाज में प्रत्येक नागरिक पर यह उत्तरदायित्व आ जाता है कि वह स्वयं नैतिकता का पालन करे क्योंकि इसी हालत में वह राजकाज चलाने वालों को ठीक मार्ग पर रहने के लिए बाध्य कर सकता है।

राजनीति इस लेख का विषय नहीं किन्तु वर्तमान युग में और वह भी लोकतन्त्रात्मक समाज में देश और समाज की चर्चा करते समय राजनीति को न छूना सम्भव नहीं। गहरी दृष्टि से देखिए तो राजनीति भी हमारे जीवन का एक आवश्यक अंग बन गई है। मतदान नागरिकता का अधिकार है और लोकतन्त्र में मत ही राजनैतिक शक्ति का आधार है। इसका यह अर्थ हुआ कि मतदाताओं में जो गुण और अवगुण होंगे प्रायः वही गुण और अवगुण उनके प्रतिनिधियों में भी होंगे। तो यह आवश्यक है मतदाताओं यानी नागरिकों में नैतिकता का संचार हो।

नैतिकता का प्रतिदिन के जीवन से सम्बन्ध समझने के लिए रोजमर्रा की समस्याओं पर दृष्टि डाल लेना काफी है। आज हम यह आम शिकायत सुनते हैं कि सरकारी कर्मचारी मेहनत और तेजी [illegible] काम नहीं करते। सरकारी महकमों में रिश्वत चलती है। व्यापारी वर्ग ईमानदारी नहीं बरतता। खाने पीने की वस्तुओं में मिलावट होती है। दवाइयां तक शुद्ध नहीं मिलतीं। मजदूर वर्ग अपना काम पूरा नहीं करता। कारखानेदार मजदूरों का अधिकार दबाते हैं

और उनके हित का पूरा ध्यान नहीं रखते। विद्यार्थियों और अध्यापकों में शिष्टता का सम्बन्ध नहीं रहा है। अनुशासन सब जगह कमजोर हो रहा है इत्यादि। इन्हीं सब बुराइयों के फलस्वरूप यह भी शिकायत जड़ पकड़ रही है कि एकता और राष्ट्रीयता की भावना मन्द पड़ती जा रही है। इन सब शिकायतों और बुराइयों की जड़ में केवल एक ही बात है वह है नैतिकता की कमी या अभाव।

चाहे वैयक्तिक चरित्र हो चाहे सामाजिक या राष्ट्रीय चरित्र हो इसका आधार केवल नैतिकता है। सच पूछिए तो धर्म किसी सम्प्रदाय का नाम नहीं। धर्म ऐसी कर्तव्यपरायणता का नाम है जो नैतिकता पर आधारित हो। अगर हम सब अपनी-अपनी जगह अपना काम नियमानुसार, लगन और परिश्रम से करें और परस्पर व्यवहार में शिष्टता बरतें ईमानदारी से काम लें और समाज की मर्यादा का पालन करें तो यही हमारी नैतिकता होगी।

मानव समाज ने धर्म को सम्प्रदाय का रूप दे दिया है। इसलिए संसार में विभिन्न धर्म और मत मतान्तर हैं। सबके चारों ओर कट्टरता इकट्ठा हो गया है जो एक दूसरे से टकराता है। लेकिन नैतिकता सब धर्मों की जान है। इसमें किसी धर्म या सम्प्रदाय का दूसरे से कोई टकराव नहीं। इसमें एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से भी टकराव नहीं।

नैतिकता का अभाव कैसे दूर हो और समाज के विभिन्न वर्गों में नैतिकता का कैसे संचार हो इस प्रश्न का उत्तर आसान नहीं। हम अपनी समस्याओं का जितनी सरलता से विश्लेषण कर लेते हैं उतनी सुगमता से उनका उपाय नहीं कर पाते। कारण यह है कि हमारे सोचने और बोलने की शक्ति जितनी तीव्र है काम करने की शक्ति उतनी तेज नहीं। हमारे वचन और कर्म में बड़ा अन्तर है। इस अन्तर को कम करने का यत्न करना नैतिकता को शक्ति देना है।

नैतिकता ऐसी चीज है जिसका प्रचार कथन से नहीं अनुकरण से होना चाहिए। दूसरे शब्दों में वही महानुभाव नैतिकता का प्रचार करने के पात्र हैं और उन्हीं के शब्दों का असर भी हो सकता है जिनके जीवन में नैतिकता की झलक हो। सच्चे साधु और सन्त के जीवन में नैतिकता कूट-कूटकर भरी होती

है। इसीलिए उनकी बात का अधिक मूल्य होता है।

अणुव्रत-आन्दोलन का नेतृत्व और सचालन करने वाले मुनिजनों में से कुछ के सम्पर्क में मैं आया हूँ। उनके त्यागमय जीवन से श्रद्धा भी होती है और प्रेरणा भी मिलती है। मैं उनका अनुकरण करने में अपने आपको असमर्थ पाता हूँ। शायद हमारे समाज में बल्कि सारे मानव समाज में मेरे जैसे असमर्थ लोग ही अधिक हैं किन्तु मेरा विश्वास है कि अणुव्रत से हमें नैतिकता का जो सन्देश मिलता है उसे यथायोग्य ग्रहण करना और अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिदिन के जीवन में घटाने का यत्न करना असम्भव या बहुत कठिन नहीं।

हम आसमान तक उठने की शक्ति नहीं रखते तो न सही इसका यह अर्थ तो नहीं कि हम गड्ढ से निकलकर भूमि के स्तर तक पहुँचने का यत्न भी न करें। हमारे राष्ट्र का नव निर्माण हमसे दूसरी रचनात्मक योजनाओं के साथ एक ऐसी योजना की भी मांग कर रहा है जिससे हम सबमें और हमारे समाज में नैतिकता का संचार हो वरना हम ऐसा समाज बना लेंगे जिसमें समृद्धि तो होगी सन्तोष और शान्ति नहीं।

१४

भूदान और अणुव्रत

—श्री यशपाल जैन

सम्पादक, जीवन साहित्य

गीता में कहा गया है कि इस संसार में जब-जब धर्म की हानि होती है, कोई संकट आता है तब-तब कोई न कोई महापुरुष उत्पन्न होता है और धर्म विरोधी तत्त्वों को दूर करके इस धरा को संकट से मुक्त कर देता है। बुद्ध महावीर, ईसा मुहम्मद आदि सब इसी कथन की पुष्टि करते हैं और गांधी का उदाहरण तो हम लोगों के सामने एकदम ताजा है।

मनुष्य के अन्दर दो प्रकार की प्रवृत्तियां होती हैं—सत् और असत्। सत् वृत्तियों के द्वारा वह लोक हितकारी कार्य करता है, असत् के द्वारा लोक-विघातक। जब सत्वृत्तियां अधिक शक्तिशालिनी हो जाती हैं तो संसार भला दिखाई देने लगता है लेकिन जब असत्वृत्तियां जोर पकड़ जाती हैं तो यह दुनिया नर्क बन जाती है।

भले बुरे का यह चक्र अनादि काल से चला आया है और आगे भी चलता रहेगा।

भारत आध्यात्मिक देश रहा है। एक समय था जब वह अपने दोषों का दर्शन करके उन्हें दूर करने का प्रयत्न करता था। वह दूसरों को दोषी ठहराने के स्थान पर कहता था—

बुरा जो देखन मैं चला
बुरा न दीखा कोय।

जो दिल खोजा आपना,
मुझसा बुरा न कोय ।।

अथवा

'मो सम कौन कुटिल खल कामी ?'

लेकिन पश्चिमी सभ्यता का प्रताप कहिये या युग के विपरीत प्रभाव की महिमा आज मानव की दृष्टि बहिर्मुखी हो गई है। उसे दूसरों की आंख का तिल ताड़ दिखाई देता है और अपने बड़े-से बड़े दोष को देखने का तो उसे अवकाश ही नहीं है। भौतिकता में वह इतना लिप्त हो गया है कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग् चारित्र को एकदम भूल गया है। वह अहंकार, महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति तथा प्रभाव के विस्तार के लिए दिन-भर भटकता है पर क्या एक भी आदमी अपनी छाती पर हाथ रख कर कह सकता है कि उसे सच्ची शान्ति और सच्चा सुख मिलता है ?

राष्ट्रों की महत्त्वाकांक्षा के परिणामस्वरूप हम दो महायुद्ध और उनके द्वारा भीषण विध्वंस देख चुके हैं। आज फिर तीसरे युद्ध के बादल क्षितिज पर मंडराते दिखाई दे रहे हैं। भौतिक दृष्टि से बौखला होकर प्रत्येक राष्ट्र अपनी सुरक्षा और विस्तार के लिए भयंकर से भयंकर अस्त्रों का आविष्कार और निर्माण कर रहा है। अणुबम और हाईड्रोजन बम तोपें गोला बारूद यानी पाशविक बल के जितने साधन संभव हो सकते हैं राष्ट्र खोज-खोज कर निकाल रहे हैं। वे हिंसा के द्वारा शान्ति स्थापित करना चाहते हैं। अणुबम के फलस्वरूप हिरोशिमा में हजारों निरीह व्यक्तियों का हनन होता है तो क्या उन्हें इस बात का संतोष है कि उनके एक ही बम से दुनिया दहल उठी।

आज हम सब एक संकट काल से गुजर रहे हैं। कहते हैं, यह दुनिया भलाई पर टिकी है। और आज दुनिया का अस्तित्व मौजूद है तो मानना चाहिए कि भलाई अभी तक नाम शेष नहीं हुई है। पर आज तो चारों ओर हिंसा का बोलबाला दिखाई देता है, मनुष्य और समाज का दूषित रूप दृष्टिगोचर होता

है वह सब इस बात का द्योतक है कि मानव-समाज और राष्ट्र की असद् वृत्तियां अधिक बलवती हो उठी हैं।

दुनिया पर आये संकट को दूर करने के लिए अनेक शान्तिवादी प्रयत्नशील हैं। आज से तीन वर्ष पूर्व विश्व के शान्तिवादियों का शान्तिनिकेतन और सेवाग्राम में सम्मेलन हुआ था। बहुत से देशों के शान्तिवादी व्यक्तियों ने उसमें भाग लिया था।

अहिंसक क्रान्ति के लिए इधर दो स्वर और उठे हैं। एक है 'भूदान यज्ञ' जिसके प्रवर्तक आचार्य विनोबा भावे हैं। आज से लगभग दो वर्ष पूर्व उन्होंने इस आन्दोलन का सूत्रपात किया था। इस आन्दोलन के द्वारा वह मौजूदा आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं को दूर करके उन मूल्यों को स्थापित करना चाहते हैं, जिनसे यह विश्व एक कुटुम्ब की भांति जीवन-यापन करे। एक व्यक्ति का सुख-दुःख दूसरे व्यक्ति का सुख-दुःख बने, कोई किसी का शोषण न करे, सबको अपने विकास का समान अवसर और समान सुविधायें मिलें और समष्टि के हित में व्यष्टि के हित सन्निहित हों। संक्षेप में विनोबाजी इस अहिंसक क्रान्ति के द्वारा गांधीजी के 'रामराज्य' के स्वप्न को मूर्तरूप देना चाहते हैं। वे पैदल घूम-घूम कर भूमि एकत्र कर रहे हैं। अब तक लगभग १० हजार मील पैदल चल चुके हैं और २१ लाख एकड़ भूमि उन्हें मिल चुकी है, पर उनका कहना है कि भूमि एकत्र कर लेने मात्र से मेरे उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जाती। मैं समाज का ढांचा ही बदल देना चाहता हूं। वह यह भी कहते हैं कि स्थायी परिवर्तन तब होगा जब मानव के अन्दर आत्मिक बल उत्पन्न होगा। इसीसे वह प्रत्येक व्यक्ति से आग्रह करते हैं, अपने दोषों को देखो, उन्हें दूर करने का प्रयत्न करो और इस प्रकार शुद्ध बनकर समाज और राष्ट्र की सेवा में जुट जाओ।

भूदान यज्ञ की भूमिका यों देखने में आर्थिक लगती है, लेकिन गहराई से देखें तो पता चलेगा कि वह जीवन के प्रत्येक अंग तक व्याप्त है।

दूसरा स्वर है 'अणुव्रत' का जिसे आचार्य तुलसीगणी ने ऊंचा किया है। विनोबा के भूदान यज्ञ की भांति यद्यपि अणुव्रत-आन्दोलन अभी देशव्यापी नहीं

बना है तथापि उसकी बड़ी-बड़ी सम्भावनाएं हैं। उसकी भूमिका विशुद्ध आध्यात्मिक है। वह जीवन की पावनता पर जोर देता है। उसकी दृष्टि में सारी बुराइयों की जड़ मानव का अपना अहंकार, लिप्सा महत्वाकांक्षा पारस्परिक भेद भाव, ईर्ष्या द्वेष आदि हैं। अतः उसका प्रयत्न है कि मानव अपने दोषों को देखे और स्वेच्छापूर्वक उन्हें दूर करे। उसने जिस संघ की स्थापना की है उसका द्वार मानव-मात्र के लिए खोल दिया है। जो जीवन-शुद्धि के नियमों का पालन करता है, वह उसका सदस्य बन सकता है भले ही वह किसी भी जाति अथवा धर्म का अनुगामी हो। दूसरे वह किसी को भी घर-बार छोड़ने की प्रेरणा नहीं करता। वह कहता है कि तुम जहां भी हो अपने को दोष मुक्त बनाने का प्रयत्न करो। जो कुछ तुम्हारे हाथ में है, उसे बुराइयों से बचाओ। अणुव्रती संघ के प्रवर्तक आचार्य तुलसी तथा उनके अनुयायी देश के विभिन्न भागों में परिभ्रमण करके इस आन्दोलन को व्यापक बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

अणुव्रती संघ के चार महान् उद्देश्य हैं —

१—जाति, वर्ण देश और धर्म का भेद-भाव न रखते हुए मानव-मात्र को सदाचार की ओर आकृष्ट करना।

२—मनुष्यों को अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि तत्त्वों की उपासना का व्रती बनाना।

३—आध्यात्मिकता के प्रचार द्वारा गृहस्थ-जीवन के नैतिक स्तर को ऊंचा करना।

४—अहिंसा के प्रचार द्वारा विश्व-मैत्री व विश्व-शान्ति का प्रसार करना।

उद्देश्य शुभ हैं पर आवश्यकता इस बात की है कि उनका पालन विवेकपूर्वक किया जाए। हम जानते हैं कि प्रत्येक धर्म के मूल सिद्धान्त अच्छे होते हैं, लेकिन कालान्तर में लोग उनकी स्प्रिट को भूल जाते हैं और रूढ़ि के रूप में उनका पालन करने लगते हैं। वे शरीर को पकड़ लेते हैं, आत्मा छूट जाती है। इसलिए हम कहते हैं कि उक्त उद्देश्यों की पूर्ति विवेकपूर्ण होती रहनी चाहिए।

हर्ष है कि इन दोनों आन्दोलनों की भूमिका पृथक् होते हुए भी दोनों की

मूल भावनाएं एक हैं। इससे भी अधिक आनन्द की बात यह है कि दोनों के प्रवर्तक दो तपे तपाये महापुरुष हैं। इनमें जीवन की सादगी है, विचारों की उच्चता है और दोनों ही कठोर जीवन के अभ्यासी हैं।

हमें विश्वास है कि इन दोनों आन्दोलनों का स्वर दिन-प्रतिदिन प्रखर होता जाएगा और उनके द्वारा लोकहित होगा।



१२

आत्म शुद्धि का आन्दोलन

—ला० रामनाथ
महापौर दिल्ली नगर निगम

मनुष्यों के मन और आत्मा की शुद्धि करने वाले अणुव्रत-आन्दोलन के प्रशस्त व्याख्याकार मुनि श्री नगराजजी आज हमारे बीच पधारे हैं। यह हमारे लिए अत्यन्त सौभाग्य की बात है।

भारतवर्ष सदा से ही सन्तों व महात्माओं की भूमि रहा है और यहां पर भौतिक मूल्यों की अपेक्षा आध्यात्मिक मूल्यों का महत्त्व अधिक रहा है। सन्देह और अविश्वास के इस युग में जहां भौतिक सुविधाओं के लिए संसार पागल बन रहा है वहां भारतवर्ष आज भी शान्ति और मैत्री का रास्ता दिखाने वाला प्रकाश स्तम्भ सिद्ध हो रहा है। अपनी आध्यात्मिक सम्पत्ति जो युगों से हमें विरासत में मिल रही है के कारण ही यह स्थान बन रहा है।

दुर्भाग्य की बात यह है कि दूसरे विश्व-युद्ध के बाद हमारा नैतिक स्तर सभी तरह से नीचे गिरता जा रहा है। अर्थ-प्राप्ति की होड़ ने व्यापार-धन्धों में अनैतिकता को जन्म दिया है। भौतिकवाद को आवश्यकता से अधिक प्रश्रय मिला है। किन्तु हमें यह याद रखना होगा कि भौतिक सुविधाओं की प्राप्ति हमारे जीवन का ध्येय नहीं है। दौलत से आत्मिक शान्ति कभी नहीं मिल सकती है। वह तभी मिल सकती है जबकि हमारी आत्मा में यह सन्तोष हो जाएगा कि हमने हमारे कर्तव्य का पालन अच्छी तरह से कर लिया है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हमें यह सिखाया कि यदि तुम शाश्वत सुख चाहते हो तो यह आवश्यक हो जाता है कि साध्य के साथ साधन भी शुद्ध होना चाहिए। ऐसा ही सन्देश आज हमें आचार्य तुलसी, आचार्य विनोबा और

मुनि श्री नगराजजी जैसे सन्तों के उपदेश में मिल रहा है जो कि हमारे उत्थान के लिए अत्यन्त अपेक्षित है। सच्ची महानता के लिए हृदय की पवित्रता अति आवश्यक है। मनुष्य के हृदय में घुसी हुई पशु-वृत्ति को दूर करना ही हृदय की पवित्रता का कार्य है। इस बुरी वृत्ति के साथ सतत युद्ध करने की आवश्यकता है।

हमारे प्रशासन में भी बहुत सारी बुराइयां घुस गई हैं। प्रशासन भी हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक अंग है अतः हमारा यही उद्देश्य होना चाहिए कि हम शुद्धता और कार्य-क्षमता को प्रशासन में किस प्रकार ला सकें।

मुझे इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है कि आज मुनि श्री नगराजजी के प्रवचन से हमें बहुत लाभ मिलेगा और हमारे दिल और दिमाग को संयमित करने के लिए आवश्यक बल और हिम्मत का संबल प्राप्त होगा। साथ ही साथ सत्य की साधना के वास्तविक अर्थ में हम किस प्रकार हमारे बन्धुओं की सेवा कर सकें इसके लिए प्रेरणा भी मिलेगी।



१६

नैतिक मूल्यों की आवश्यकता

— श्री हरस वियोगी
जनसम्पर्क अधिकारी अजमेर

आज के विकसित पूंजीवादी व सामन्तवादी युग में नैतिक मूल्यों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। महानता का युग समाप्त हो चुका है। आज का युग अणु-शक्ति का है। अणु में ही सिन्धु का दर्शन करना और अणु के संघटन में ही शक्ति का उद्भव देखना युग का सत्य है। सामान्य जन की इकाई में जो सत्य राजनीतिज्ञ देखता है वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में उसी सत्य का अनुसन्धान करता है। ऐसे युग में अनिवार्य ही था कि नैतिक दृष्टि से कोई विद्वान् अणुव्रतों का रहस्य उद्घाटित करता। यही काम आचार्य श्री तुलसी कर रहे हैं। मेरा उनसे मिलने का सौभाग्य ब्यावर और अजमेर दोनों ही स्थलों पर हुआ था और मैंने उनके दर्शन के महत्त्व को उसी समय समझ लिया था जब मेरा उनसे साक्षात्कार हुआ। आज हिमालय महान् है पर वह महत्ता अणु-शक्ति पर ही अवलम्बित है जो उसे चारों ओर से आच्छादित किए हुए है। रहीम ने कहा है—'भार धरे संसार को लघु कहावत सेर'। इस नाम की स्तुति क्या कम है? शेष क्या है? अणु-शक्ति ही तो है जो संसार को साधे हुए है। बुद्धिमान् कहते हैं—जब सब कुछ जा रहा हो तब अल्प का ही ग्रहण करना चाहिए। न्यायशास्त्र कहता है— साधक वही है जो साध्य को साधे। असाध्य को साधने वाले के कार्य को दुस्साहस ही कहा जायेगा। उससे भी अधिक दुविधाजनक स्थिति सामान्य लोकमानस की है। वह आदर्श के गौरी शिखर तक नहीं पहुंच सकता पर नीति-तत्त्व की अधिकता के कारण उन्हें छोड़ भी नहीं सकता। समाज में अभी धर्म, कला, संस्कृति और इतिहास का रक्षक

वही धर्म है जो भौतिक संघर्षों में पिस कर भी उपरोक्त मूल्यों की रक्षा करता रहता है। आज के युग में इन मूल्यों की रक्षा करना कितना कठिन है इसे वही समझ सकते हैं जिन्होंने जीवन में कभी महान् आदर्शों के स्वप्न देखे हैं। आज का युग वर्ग-संघर्ष का है। स्वामी-सेवक पति-पत्नी गुरु-शिष्य आदि सभी वर्गों में जहां पहले कार्य श्रद्धा स्नेह और विश्वास से चलता था आज निरन्तर संघर्ष की भूमिका है। परिणामतः चारों ओर अधिकारों की मांग बढ़ती जा रही है और कर्त्तव्यों के प्रति ध्यान नहीं-सा है। गुरुत्व के हटने से सामाजिक मूल्यों में उथल-पुथल उपस्थित हो गई है और उसका प्रभाव नैतिक मूल्यों पर भी पड़ा है। परिवार में जिन्होंने सदैव पत्नी को 'पुरुष की छाया' कहा है, वह मुंह खोलने लगी है। समानाधिकार की मांगें उठ रही हैं जबकि सत्यता यह है कि स्त्री-पुरुष में समानता का प्रश्न ही नहीं उठता। दोनों का क्षेत्र अलग अलग है। दोनों की पूर्णता अपने-अपने क्षेत्रों में पूर्ण बनने में है। न स्त्री पुरुष बन सकती है और न पुरुष स्त्री। दोनों में से किसी एक का अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करके दूसरा रूप ग्रहण करना उभय पक्षों के लिए अहितकर होगा। आज यही हो रहा है। स्त्रियां पुरुष बन रही हैं और पुरुष स्त्रियां। जब पारिवारिक स्थिति यह हो तो राष्ट्र का निर्माण कैसे हो सकता है?

गुरु और शिष्य के सम्बन्धों को लीजिये। यद्यपि यह कहा जाता है—"बिन गुरु होय न ज्ञान" पर हममें से कितने ऐसे हैं जो इस सत्य को समझते हैं? आज जो शिक्षा दी जाती है वह व्यावसायिक पद्धति पर है। परिणामतः करोड़ों रुपये खर्च कर भी यहां नालन्दा और तक्षशिला सरीखे एक भी विद्यापीठ स्थापित नहीं कर सके हैं और न टैगोर, मुंशी प्रेमचन्द, प्रसाद व निराला सदृश दिव्य विभूति उत्पन्न कर सके हैं। गुरु-शिष्य की परम्परा का विशुद्ध निर्वाह सामाजिक जीवन में कम पड़ता जा रहा है सर्वत्र के अनुरूप में हम देखते हैं ज्ञान के क्षेत्र में शिथिलता आती जा रही है। आज का ज्ञान किताबी ज्ञान है। उसमें अनुभव की रिक्तता है इसीलिए आज का पढ़ा लिखा मानव एक भी अरस्तू, प्लेटो, कार्लाइल, वेदव्यास, बुद्ध जैसी महान् प्रतिभाओं के स्तर को नहीं पा सकता है। यदि ऐसी महाप्रतिभायें आज उत्पन्न करना चाहते

है तो आपको गुरु-शिष्य परम्परा को पुनर्जीवित करना होगा। यदि आप इस सत्य को समझना चाहें तो गुरुदेव रवीन्द्र के शान्तिनिकेतन में जायें। यही वस्तु आपको रामकृष्ण परमहंस व योगीराज अरविन्द के आश्रमों में मिलेगी। गांधीवादी गुरुकुलों में क्या इस परम्परा की अवहेलना है? यही विशुद्ध भारतीय पद्धति है जिसे हमें पुनः प्रारम्भ करना होगा। जब तक हम ऐसा न कर सकेंगे हम सदा ऐसे मेधावी ब्राह्मणों को न पा सकेंगे जिनके सम्मुख सम्राटों के बड़े-बड़े सिंहासन झुकते थे।

स्वामी-सेवक के सम्बन्ध को लीजिए। वे महामानव कहाँ गए, जो एक बार मालिक का नमक खा लेने पर कृतज्ञता के लिए उनके बन जाते थे। आज का मानव श्रम और निरन्तर कर्म तथा उनके तात्कालिक परिणामों में विश्वास करता है। परिणामतः आज वह सम्पन्न हो गया है और उसके सामने जीवन-विकास का एक ही सिद्धान्त है निरन्तर आय में वृद्धि और उसके अनुरूप व्यय के तलपट में लगे। विकसित पूंजीवादी सभ्यता में जितना अग्रसर हुआ है उसी मात्रा में भूखे-नंगे मानव का रूप हमारे सामने है जो निरन्तर संघर्ष करता है और पेट की विषम ज्वालाओं में मरता रहता है। मकान से स्वामित्व उठ गया है और राज्य ने स्वामित्व ले लिया है। यह केन्द्रीयकरण की स्थिति कब तक और कैसे चलती इस को समाजवादी जानें परन्तु मैंने अपने व्यक्तिवादी जीवन में यह जाना है कि मनुष्य की नेक-नियत पर जितना शक किया जाता है वह उतना ही पतित हो जाता है। अगर मनुष्य को ऊपर उठाना है तो उसका विश्वास करना होगा। समान से ही समान की उत्पत्ति है। घृणा प्रेम उत्पन्न नहीं कर सकती और प्रेम से घृणा नहीं हो सकती। दोनों ही विरोधी तत्त्व हैं। समाज-व्यवस्था सहकारी पद्धति पर आश्रित है। जहाँ वर्ग विद्वेष घृणावाद व अविश्वास की जड़ें हैं वहाँ समाजवाद कैसे पनप सकता है? जो मनुष्य सबको खा गया है, वह अपने को भी खा जायेगा। इसीलिये संसार के सभी नैतिक विचारकों ने हमें श्रद्धा विश्वास प्यार क्षमा करुणा प्रेम आदि के उदात्त तत्त्व दिये हैं जो मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण मूल्यों का निर्माण करने में सहायक हैं। आज की गुरु-शिष्य परम्परा में निर्वाह की कमी

जहां संगीत के पथ में तानसेन को देने में असमर्थ रही है, वहां काव्य के क्षेत्र में तुलसी-सा महान् कवि भी नहीं दे सकी है।

ऐसे ही संक्रान्तिकाल में भारतीय-दर्शन परम्परा ने आचार्य श्री तुलसी के रूप में एक ऐसे सन्त को हमारे बीच में भेजा है जो सत्य की परम्परा में विश्वास रखता है। पृथ्वी सत्य से थमी हुई है यह वैदिक कल्पना है। जैन और बौद्ध इसी हिमालय से निकली हुई ज्ञान की धाराएं हैं। वह अभागा है जो इस त्रिवेणी में स्नान नहीं कर सका है। पृथ्वी सत्य से थमी है इसमें सत्य तो माध्यम हुआ पर थमा कौन है? यह प्रश्न गौण नहीं है क्योंकि भारतवासी देश में कर्म के ऊपर कर्त्ता की मान्यता सदैव रही है। वैदिक ऋषियों ने इसीलिए सत्य से शक्ति का सन्देश दिया और शक्ति की प्रतिष्ठा व्रतों में मानी। 'महाव्रतो ब्राह्मण शुचि' अर्थात् ब्राह्मण वही है जो महाव्रत का अनुष्ठाता है और पवित्र है। यह विशुद्ध वैदिक वार्ता है पर स्त्री का सतीत्व बह रहा है और पुरुष की मर्यादाएं खण्डित हो रही हैं ऐसे आपत्काल भारत में यदि पृथ्वी की रक्षा व्रतों से नहीं हो सकती तो फिर पृथ्वी को थाम कौन सकता है? मुझे याद है अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त का अनुवाद करते समय जो मंगलाचरण मैंने लिखा था, वह एक मन्त्र ही था। पृथ्वी थमी है उन तपनाम से जो महाव्रती है। उनकी स्तुति है —

सत्य व्रत संयम शील स्वभाव
तपस्या दीक्षा हीन दाव।
निरन्तर जले अग्नि की ज्योति
धरा में हो विस्तृत स्थान।

कितनी उदात्त स्तुति है—पृथ्वी सत्य से थमी है और सत्य की शक्ति व्रतों से है। व्रतों का परिणाम संयम है और संयम स्वयं एक तपस्या है। जिसे दीक्षित ही कर सकता है। इतना सब होने पर ही ज्ञान की उत्पत्ति है पर इसकी रक्षा के लिए निरन्तर भावना का अग्निहोत्र जलाना अनिवार्य है। यही महाव्रतों की साधना है। इसीसे संसार में महत्ता का बोध होता है। व्यक्ति ऊपर उठता है।

यहां तक तो कई महाव्रतों की चर्चा है पर लिखने गये हैं जो इस महत्ता

तक पहुँच सकते हैं ? इसलिए आचार्य श्री तुलसी सदृश विद्वानों ने अणुव्रतों की रचना की । अणुव्रत सृष्टि के व मूल आधार हैं जिन पर सारे नैतिक दर्शन-शास्त्र का शिलान्यास किया गया है ।

जब आचार्य श्री तुलसी से मेरी अणुव्रतों के सम्बन्ध में चर्चा हुई तब उन्होंने बताया कि सबसे पहला अणुव्रत है—अपने को दिन में एक बार देखना । कितना स्पष्ट और सरल दर्शन है । 'know thyself' महात्मा सुकरात का कथन है । 'आतम पहिचानो' गोरख साधु पुकार-पुकार कर कह गये हैं । सारा ज्ञान आत्म ज्ञान है और सारे ज्ञान की आत्मा म सत्य है । आत्मा के पहचानने के पश्चात् सृष्टि रसमय हो जाती है । जीवन प्रयोजनमय बन जाता है । सभी मूल एक से नहीं हो सकते । आत्म-दर्शन का सिद्धान्त भी ऐसा ही मनोमय है । दर्शन से ज्ञान की ज्ञान से विराम की विराम से आनन्द की और आनन्द स अहं की उत्पत्ति है—यही वो अनहद नाद है जिसे आचार्य श्री तुलसी ने 'शान्ति' और 'तुष्टि' का रूप दिया है और बौद्धों ने 'निर्वाण' तथा वेदान्तियों ने 'आनन्द' के रूप में स्वीकार किया है ।

अणुव्रत-आन्दोलन की दूसरी विशेषता यह है कि वह व्यक्ति पर कुछ न लादकर उसे ही चुनने का अधिकार देता है । किसी प्राचीन धर्म की पुस्तक को उठाकर देखें आप देखेंगे कि सारा धर्म निषेधात्मक है । शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जो उनकी दृष्टि में पापी न हो । 'पाप' का यह सतत दर्शन हमें कालुष्यमय बनाता है । अणुव्रत-आन्दोलन हमें ही चुनने का अधिकार देता है और प्रत्येक व्यक्ति में हित-अहित की स्वतन्त्र संज्ञा स्वीकार करते हुए उसे प्रज्ञाशील प्राणी बनाता है । स्पष्ट है नैतिकता के इन दो अमूल्य सिद्धान्तों की ओर अणुव्रत आन्दोलन की दृष्टि है और यही इस आन्दोलन की विशेषता है ।

१७

सदाचार और नैतिकता का आन्दोलन

—श्री शोभालाल गुप्त
सहसम्पादक, हिन्दुस्तान

सदाचार और नैतिकता की आवश्यकता को प्रत्येक युग में स्वीकार किया गया है। दुनिया के प्रायः सभी धर्मों ने मानव-जाति को सदाचार और नैतिकता की शिक्षा दी है। सदाचार और नैतिकता की आधारशिला पर ही व्यक्ति का विकास और समाज का कल्याण हो सकता है।

आज सदाचार और नैतिकता के बन्धन ढीले पड़ गए हैं। इसीलिए दुनिया में त्राहि-त्राहि मची हुई है। व्यक्ति और राष्ट्र अपने सीमित और क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति में व्यस्त हैं। दूसरों के हिताहित का विचार करना भी उन्हें आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए चाहे जैसे उचित-अनुचित नैतिक-अनैतिक साधनों का उपयोग करने में कोई संकोच नहीं किया जाता। इसीलिए संसार में अशान्ति है, कलह है, रक्तपात है, विनाश है और बर्बरता है। मानव-जाति विनाश के द्वार पर खड़ी है।

इन परिस्थितियों को देखते हुए मानव-समाज को नैतिकता और सदाचार की ओर प्रवृत्त करने की जितनी आवश्यकता आज है उतनी पहले कभी नहीं रही। अन्धकार जितना घना हो प्रकाश की उतनी ही अधिक आवश्यकता अनुभव की जाती है। किन्तु सदाचार और नैतिकता की राह सरल नहीं है। वह कांटों से भरी राह है। उस पर चलने के लिए दृढ़ संकल्प की आवश्यकता होगी, त्याग और बलिदान करना होगा और हर तरह के कष्ट सहने को तैयार होना पड़ेगा। जब दुनिया का प्रवाह उल्टी दिशा में बह रहा है तो सही मार्ग को पकड़ने के लिए हिम्मत और दृढ़ संकल्प की जरूरत होती है।

दुनिया में हमेशा अच्छाई और बुराई में संघर्ष होता आया है। अन्त में जीत अच्छाई की होती है। बुराई की शक्तियां मनुष्य को पतन की ओर ले जाती हैं किन्तु मनुष्य ऊर्ध्वगामी है वह बुराई की शक्तियों से लड़ता है और अच्छाई की ओर जाने की कोशिश करता है। केवल जरूरत इस बात की होती है कि उसके भीतर छिपी हुई और सोई हुई अच्छाइयों की शक्तियों को जगाया जाए; उसके विवेक को जागृत रखा जाए तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य अच्छा न बने नीतिवान् और सदाचारी न बने।

तेरापन्थ के वर्तमान आचार्य श्री तुलसीजी महाराज ने जो अणुव्रत-आन्दोलन शुरू किया है, मैं उसे नैतिकता और सदाचार की स्थापना का ही आन्दोलन मानता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह आन्दोलन अधिक से अधिक व्यापक बन और लोगों के जीवन में सदाचार और नैतिकता को अनिवार्य स्थान प्रदान कर।

अणुव्रती बननेके लिए जो नियम निर्धारित किए गए हैं व निषेधात्मक हैं। वे बुराइयों का निषेध करते हैं। मेरी दृष्टि में वे कड़े नहीं हैं। समाज के वर्तमान निम्न स्तर को देखते हुए वे कड़े प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु वास्तव में व कड़े नहीं हैं। एक अच्छे नागरिक को इन नियमों का पालन करना ही चाहिए। चोरबाजारी करना रिश्वत लेना या देना पदार्थों में मिलावट करना और व्यापार में अन्य प्रकार से बेईमानी करना गर्हित सामाजिक अपराध हैं और इन अपराधों को करने वाला कोई भी आदमी भला आदमी कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता। य अपराध राज्य नियम के द्वारा भी दण्डनीय ठहराए गए हैं।

इसी प्रकार विदेशी वस्त्रों को न पहनना अस्पृश्यता का प्रश्रय न देना शराब और अन्य पदार्थों का सेवन न करने सम्बन्धी व्रत भी युग धर्म की आवश्यकता को पूरा करते हैं। स्वदेशी अस्पृश्यता-निवारण और मादक-द्रव्य-निषेध को राष्ट्र पिता महात्मा गांधी ने भी अपने रचनात्मक कार्यक्रम में प्रमुख स्थान दिया था। अणुव्रतों में स्वदेशी वस्त्रों सम्बन्धी नियम को थोड़ा और व्यापक बनाने की आवश्यकता महसूस होती है। वह केवल वस्त्रों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए और उसमें खादी का भी समावेश किया जाये तो ज्यादा अच्छा होगा। धूम्रपान की बीमारी ने हमारे समाज में बुरी तरह प्रसार पाया है। अणुव्रती के लिए धूम्रपान निषेध का मैं विशेष रूप से स्वागत करता हूँ। धूम्रपान जिसे सभ्यता

की निशानी मान लिया गया है, मैं असभ्यता का ही प्रतीक मानता हूँ।

अणुव्रत-आन्दोलन का मैं इसलिए भी स्वागत करता हूँ कि वह हमारे समाज में व्याप्त अनेक सामाजिक रूढ़ियों और कुरीतियों पर प्रहार करता है। वृद्ध विवाह, बहु विवाह, बाल विवाह जैसी सामाजिक कुप्रथाओं का अंत होना ही चाहिए। इसी प्रकार बड़े जीमनवारों और मृतक भोजों में भाग न लेना, दहेज का प्रदर्शन न करना, मरने पीछे न खाना, वेश्या नृत्य में भाग न लेना, आतिशबाजी न करना, सामाजिक अपव्यय को रोकने के लिए जरूरी है और सामाजिक संस्कारिता के लिए भी आवश्यक है।

आर्थिक विषमता मानव जाति के लिए एक अभिशाप सिद्ध हो रही है। आने वाले युग में एक ओर अत्यधिक गरीबी और दूसरी ओर अत्यधिक अमीरी को सहन नहीं किया जाएगा। अणुव्रती को अपने परिग्रह की एक सीमा निर्धारित करनी चाहिए, यह विचार स्वागत योग्य है। यह आर्थिक समानता की दिशा में स्वेच्छापूर्वक उठाया हुआ एक कदम होगा। अवश्य ही परिग्रह की यह सीमा ऐसी न होनी चाहिए, जो प्रकटतः हास्यास्पद प्रतीत हो। सादगी और संयम मनुष्य के जीवन को निर्मल बनायेंगे और मनुष्यता के गुणों के विकास में सहायक होंगे।

अणुव्रत-आन्दोलन में उसके प्रवर्तक को अद्वितीय स्थान दिया गया है। वही उसके कर्त्ता और नियंता हैं। एक पंथ के आचार्य के नाते उनके प्रति जो श्रद्धा है, उससे इस आन्दोलन को पोषण और बल मिलता है।

१८

चरित्र गठन की एक तस्वीर

—श्रीमती सुचेता कृपलानी
श्रम मंत्री उत्तरप्रदेश

गांधीजी का कहना था—देश के लोग शुद्ध हों, सेवापरायण हों। वे स्वराज्य का भी ऐसा ही अर्थ करते थे। वे जीवनभर इसके लिए चेष्टा करते रहे। आज हमारे देश को स्वराज्य प्राप्त है पर जो काम हो रहा है उससे उतना लाभ नहीं जितना होना चाहिए। करोड़ों रुपयों का गबन हो रहा है। ऊंचे-ऊंचे स्थानों पर लोग अपने भाई भतीजों को रख रहे हैं। बड़े दुःख की बात है हर महकमे में आज रिश्वतखोरी है, चोरबाजारी है। देश की बड़ी-बड़ी योजनाएं गलत रास्ते पर जा रही हैं। मुल्क में यह बहुत बड़ी व्याधि है। इसका असली कारण है सच्चरित्रता का अधःपतन।

गांधीजी चाहते थे उनकी सेना में जो लोग हों वे निर्लोभ और निर्भय हों। लक्ष्य को जैसे-तैसे हासिल करने के वे हिमायती नहीं थे। वे कहते थे—लक्ष्य की तरफ सच्चाई और ईमानदारी के साथ रवाना होंगे तभी सफल होंगे।

हम आजाद मुल्क की अट्टालिका बना रहे हैं उसकी बुनियाद को पक्का करना होगा। उसका जरिया है—सदाचार, सच्चरित्रता। पर अफसोस यही है कि करे कौन?

बड़ी प्रसन्नता है कि आचार्य श्री तुलसी जिनका जीवन अध्यात्म-साधना और भजन का है इस ओर प्रेरणा दे रहे हैं। वे असली चीज को समझते हैं। वे जानते हैं लोगों में चरित्र-सुधार की कितनी बड़ी आवश्यकता है? बिना चरित्र के मुल्क नहीं बन सकता यही बात कूट-कूट कर गांधीजी हममें भरते थे।

जैनधर्म में सदियों से पांच व्रतों की परम्परा है। ये व्रत हर धर्म की बुनियाद हैं। यह किसी एक धर्म की चीज नहीं है। जैनधर्म में महत्त्व की बात यह है कि अलग-अलग स्तर के लोगों के लिए साधना का अलग-अलग रूप बताया गया है। जो सारे संसार से निर्लिप्त होकर रहते हैं उनके लिए व्रतों का ऊंचा रूप है और जो जीवन को सम्पूर्णतया धार्मिक नहीं बना सकते उनके लिए व्रतों का मध्यम रूप है। वे छोटे-छोटे नियम लेकर अपने जीवन को अच्छा बना सकते हैं। यह बड़ा सुन्दर बंटवारा है।

हम लोगों को संसारी लोगों को रास्ता बताने के लिए अणुव्रत-आन्दोलन आचार्य श्री तुलसी की बहुत बड़ी देन है। इतिहास में समय-समय जमाने में अलग-अलग जरूरतें होती हैं। मूल रूप में बात एक है, पर उसकी व्याख्या के रूप भी जमाने के अनुसार भिन्न होती है। अणुव्रत-आन्दोलन आज के जमाने में अहिंसा आदि व्रतों को व्यावहारिक रूप में पेश करता है। जैसे अहिंसा का अर्थ है—किसी जीव को न मारना। आचार्य श्री तुलसी ने अपनी मौलिकता के अनुरूप अणुव्रतों में जो नियम रखा है कि 'हत्या व तोड़-फोड़ का उद्देश्य रखने वाले किसी दल या संस्था का सदस्य नहीं बनना और न उसके ऐसे कार्यों में भाग लेना' यह नियम आज के लोकतन्त्रीय युग के लिए कितना महत्त्व और लाभकारी है। इसी तरह एक दूसरा नियम है किसी भी व्यक्ति को अस्पृश्य नहीं मानना। दुनिया में सब बराबर हैं। डेमोक्रेसी में कोई किसी को नीचा क्यों समझे—इस समानता की भावना को बहुत बड़ी प्रेरणा यह व्रत देता है।

आज जैसा कि समय का तकाजा है आचार्य श्री ने अहिंसा आदि धर्म सिद्धान्तों की अणुव्रत आन्दोलन के रूप में जो जीवनोपयोगी व्याख्या दी है इससे जनता का बहुत बड़ा उपकार होगा।

हम मुल्क की भलाई चाहते हैं पर हो नहीं रही है क्योंकि देश में चरित्र गठन की कमी होती जा रही है। आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन के रूप में सबके सामने चरित्र-गठन की एक तस्वीर रखी है।

भारत का वैशिष्ट्य सदा इस बात में रहा है कि यह एक धार्मिक देश है दुनिया को नैतिक रास्ता बताने वाला देश है। लेकिन बड़े अफसोस की बात

है कि आज हमारे देश में नैतिकता की कमी नजर आ रही है। मैं जब अमेरिका गई थी तब वहां रामकृष्ण मिशन के स्वामी निखिलानन्द ने मुझे बताया कि अमेरिका हिन्दुस्तान को धर्म नीति और दर्शन का देश मानता है पर दुःख की बात है कि हमारे नौजवान धर्म और दर्शन की बात तक नहीं मानते जो हमारे देश की असली चीज है अपनी देन है। धर्म और दर्शन की बातों को तो हम एक बार अलग रखें साधारण रूप से नैतिकता और धार्मिकता की जो शिक्षाएं हैं उनको भी वे नहीं मानते और न वैसा जीवन बनाने की कोशिश करते हैं।

अणुव्रत-आन्दोलन का जो काम चल रहा है उससे मुझे बहुत खुशी है। मैं चाहती हूं इसके प्रचार का लोगों पर असर पड़े। वे अपने संगठनों में इसे अपनाएं। इस आन्दोलन के आदर्श व्यक्ति व समूह में आने चाहिए।

नहीं हो जाता वह शाश्वत रहता है। अणुव्रत-आन्दोलन मनुष्य को धर्मोन्मुख बनाने का ही एक सही अनुष्ठान है। अणुव्रती होने के साथ-साथ व्यक्ति की वैयक्तिक तथा सामूहिक समस्याएं स्वयं तिरोहित हो जाती हैं। मुनि श्री नगराजजी के ही शब्दों में यह मानव का उत्तम संकल्प तथा जीवन की पुष्कल मर्यादा है। यह आत्मानुशासन का प्रतीक और दैवी-भावनाओं का निकाय है। वेद में लिखा है—'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे'—अर्थात् समस्त संसार को मित्र की दृष्टि से देख। स्वयं भगवान् बुद्ध ने कहा है कि यदि मनुष्य अपनी तृष्णा पर विजय प्राप्त कर ले तो वह सब दुःखों एवं विषमताओं को जीत लेता है। यदि अणुव्रत आन्दोलन के सम्बन्ध में यह कहा जाए कि धर्म व संस्कृति का वह सफल निचोड़ है जो एक ही प्याले में एकरस करके प्रस्तुत किया गया है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इस आन्दोलन को विकसित करने के लिए प्रत्येक स्कूल-कॉलेज जहां भावी नागरिक का स्वरूप निर्धारित होता है प्रत्येक कार्यालय—सरकारी एवं गैर सरकारी—प्रत्येक मिल एवं प्रत्येक संस्थान में अणुव्रती स्वयं जाकर बालक-बालिकाओं कर्मचारियों एवं श्रमिकों से अणुव्रत-दीक्षा दिलाएं और उनमें अनुशासन स्नेह एवं मित्रता की भावना जागृत करें। मेरा तो यही मत है कि यदि अणुव्रत-आन्दोलन को सफल बनाना है तो स्कूल व कॉलेज स्तर पर इसका प्रचार किया जाए। इसके लिए आध्यात्मिक चेतना एवं प्रचार तथा दूरदर्शिता की आवश्यकता होगी।

२०

अणु से महान् की ओर

—स्वामी प्रेमपुरीजी

मानव महत्त्वाकांक्षी है, प्रगतिशील प्राणी है। वह देश काल की सीमा से भी परे पहुँचने का साहस रखता है। अपनी व्यष्टि को समष्टि में समाविष्ट करने पर तुला हुआ रहता है अपने बिन्दुभाव को आनन्दसिन्धु में बरसा कर एक[illegible]र देने के लिए तत्पर होता है अपने अणुत्व को महत्त्व में मिला देने के लिए आतुर रहता है और अपनी इस आतुरता को शान्त करने के लिए अनेक साधनों को अपनाता है। उनमें प्रमुख साधन है—अणुव्रत। भारतीय व्रतों की भावना किसी दुराग्रह या अन्धश्रद्धा के कारण नहीं बनी है किन्तु अनुभवगम्य मौलिक सिद्धान्त पर आधारित हुई है। आत्मीय आत्मा का प्राणी मात्र की आत्मा के साथ ऐक्यानुभव ही सार्वभौमीय अणु आदि व्रतों की आधार-शिला है। जिसे अपनी अणुता का अनुभव होता है वही महत्त्वाकांक्षी हो सकता है। अणुता के अनुभव से अपनी लघुता का असन्तोष उत्पन्न होता है और वही महत्ता की आकांक्षा को उत्तेजित कर देता है। जब तक लघुता का असन्तोष नहीं होता तब तक महत्ता की आकांक्षा का उद्दीपन क्यों कर हो सकता है? कदापि नहीं हो सकता।

अहिंसादि अणुव्रत के विकास के लिए आहार-शुद्धि परमावश्यक है। खुराक का प्रभाव मन पर तत्काल ही पड़ता है अतः हिंसामय आहार का वर्जन अनिवार्य है। जहाँ आत्मीयता होती है वहाँ हिंसा नहीं होती प्रत्युत प्रेम होता है। अपने शरीर के अंगों में आत्मीयता है तो किसी अंग से किसी अंग में हिंसा तो क्या द्वेष तक नहीं होता प्रत्युत प्रत्येक में परस्पर घनिष्ट प्रेम ही होता है। प्रत्येक अंग एक-दूसरे के लिए सहयोग सेवा एवं सहायता करने में प्रस्तुत रहता

है। यों अहिंसादि स्व-शरीर में प्रतिष्ठित है। जैसे-जैसे अहिंसादि की शक्ति बढ़ती जाएगी वैसे वैसे उसका क्षेत्र भी व्यापक होता जाएगा। शरीर से कुटुम्ब में कुटुम्ब से बिरादरी में बिरादरी से मानवसमाज में और मानवसमाज से प्राणीमात्र में अहिंसादि की प्रतिष्ठा हो सकेगी क्योंकि आत्मौपम्य के नाते प्राणी मात्र में आत्मीयता होने पर प्रेम बरबस हो ही जाता है और प्रेम में छल-कपट आदि न होने के कारण अहिंसा के साथ सत्य अस्तेय आदि भी अनायास ही आ जाते हैं।

अणुव्रती समन्वयवादी होता है। वह अपनी अणु-दृष्टि को क्रमशः बढ़ाता है। अणु-अणु से घट-घट में घट-घट से पिण्ड-पिण्ड में और पिण्ड-पिण्ड से ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्ड में व्याप्त एक ही आत्मदेव के दर्शन करता है। जो आत्मदेव 'प्रेमपुरी' नामक सन्यासी शरीरावच्छेदेन लिखने वाला बन रहा है, वही पाठक नामक पाठक-पाठिका शरीरावच्छेदेन पढ़ने वाला बनेगा। जो बोलने वाला है, सुनने वाला भी वही है, जो देता है, लेता भी वही है। जो बैठकर एक हाथ से परोसता है, दूसरे मुख में बैठकर भोजन भी वही करता है। कैसा मजा है! न कोई रोकने वाला न कोई टोकने वाला न किसी का एहसान और न किसी प्रकार का संकोच। बस मंगल ही मंगल प्रेम ही प्रेम है। कितनी बढ़िया अवस्था है यह। यही महत्ता की कसौटी है, अवधि भी यही है।

अणुव्रती को अपने प्रति दूसरों के कर्तव्य की अपेक्षा दूसरों के प्रति अपने कर्तव्य का भान अधिक होता है, अपने अधिकार की अपेक्षा दूसरों के अधिकार का ध्यान अधिक तथा सम्पूर्ण रहता है। वह समझता है कि जैसे कोई मेरी हिंसा (हानि) करे तो मुझे व्यथा होती है वैसे ही मैं जिसकी हिंसा करूंगा उन्हें भी पीड़ा होगी ही। जैसे मेरे लिए कोई कटु या असत्य आचरण करे तो मुझे अप्रिय लगता है वैसे मैं भी यदि किसी के लिए कटु या झूठ बोलूंगा तो उसे भी वैसा ही लगेगा—'अतः आज से मैं कभी कहीं और किसी के सामने मनसा, वाचा, कर्मणा न तो किसी को किसी प्रकार की हानि पहुंचाऊंगा और न ही किसी के लिए असत्य या अप्रिय आचरण ही करूंगा।' अणुव्रती के इस संकल्प का धर्म-भाव अर्थ देश काल पात्र में विस्तार हो जाने पर समता का अणु न

रहकर महाव्रत होता हुआ सार्वभौम बन जाता है।

अणुव्रत का अनुष्ठान किसी आधिभौतिक या आधिदैविक लाभ की नियत से नहीं करना चाहिए, सत्कार या सम्मान की कामना से अथवा अनादर या अपमान के भय से भी नहीं होना चाहिए, किन्तु जीवन के एक अविभाज्य अंग के रूप में सतत और स्वाभाविक होते रहना चाहिए। व्रत के बिना मन ही न लगे, रहा ही न जाए, व्रत जीवन से भी प्रिय बन जाए, ऐसी नियत से अणुव्रत का आचरण बराबर करते रहना चाहिए।

अणुव्रती में ऐसा अभिमान नहीं होता कि मैं व्रती हूँ। अभिमान होते ही व्रत 'व्रत' न रहकर मिथ्याचार में परिणत हो जाता है। उसमें वास्तविकता नहीं रह पाती दिखावा-मात्र रह जाता है अर्थात् दम्भाचार या पाखण्ड का रूप धार लेता है। अणुव्रत के अभिमान से उसकी महत्ता सिद्ध नहीं होती। जिसमें महत्ता होती है उसमें अभिमान नहीं होता। व्रत के साथ अपनी एकता करके व्रतहीनों से अपने को श्रेष्ठ मानने का नाम अभिमान है। अभिमान के कारण जिनमें व्रत का अभाव या कमी देखने में आती है, उनको तुच्छ समझ कर उनसे घृणा होने लगती है और जिनमें अपने से अधिक व्रत-निष्ठा नजर आती है, उनको घमण्डी मानकर उनसे ईर्ष्या होने लगती है। घृणा ईर्ष्या आदि अहिंसा प्रभृति दैवी सम्पत्ति की विरोधी आसुरी सम्पदा है सुतरां सर्वथा त्याज्य है।

जो सच्चा व्रती है, उसको किसी से घृणा ईर्ष्या या विद्वेष नहीं होता। वह तो सजीव निर्जीव सब में समभाव से विराजमान अपने आत्मदेव के दर्शन करता हुआ सबसे अपने समान प्रेम करता है। अणुव्रती की यही महत्ता है कि उसका जीवन अकेले के लिए न रहकर ब्रह्माण्ड भर के लिए हो जाता है। वह अपने स्वार्थ को सर्वार्थ में सम्मिलित किए रहता है। अणुव्रती विश्व मानव होता हुआ विश्वातीत भी होता है। वह किसी भी प्रकार का भेदभाव रखे बिना ही संसार की स्नेहभरी दशा में संलग्न होता हुआ भी अन्तर से एकदम असंग रहता है। परमदयानिधान परमात्मा की असीम दया से हम अणुव्रत के द्वारा महाव्रत में पदार्पण करने के लिए भाग्यशाली बनें।

●

२१

नैतिक पुनर्जागरण

—डा० हरेकृष्ण मेहताब
तत्कालीन राज्यपाल, बम्बई

आध्यात्मिक और मानवतावादी दृष्टिकोण अनादिकाल से हमारी सनातन संस्कृति के परम्परागत मूलाधार रहे हैं। जीवन में संयम और नैतिकता युग-युगों से हमारी सांस्कृतिक विरासत रही है। परन्तु युगों की दासता-जन्य निराशा एवं द्वितीय महासमर-जनित अभावों की प्रतिक्रिया स्वरूप आज हमारे जीवन में नीति का स्थान अनीति ने ले लिया है। लोक-जीवन में व्याप्त घोर अनैतिकता एवं असंयम ने युग-मानवता की जड़ों को कितना खोखला एवं निर्जीव कर दिया है—यही आज के विचारक के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। अनीति-जर्जर समाज में आज जीवन के नैतिक पुनर्निर्माण का प्रश्न कितना महत्त्वपूर्ण है—यह किसीसे छिपा नहीं है। इस दृष्टिकोण से अणुव्रत-आन्दोलन के द्वारा देश के विभिन्न भागों में नैतिक नव जागृति का जो कार्य किया जा रहा है, वह उद्देश्य में परम पुनीत होने के साथ ही साथ स्तुत्य और अनुकरणीय भी है।

नीति सही धर्म व संयम का ही दूसरा नाम है। मन पर नियन्त्रण व्यक्तित्व विकास की कुंजी है। मन पर काबू पाने की बात वैसे सभी धर्मों में कही गई है। मगर मेरा अपना ऐसा विश्वास है कि यह बात कहने में जितनी सरल है व्यावहारिक जीवन में इस पर अमल कर सकना उतना ही दुरूह है। मगर इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि व्यक्ति अपनी ओर से मन के नियन्त्रण का प्रयास करना ही छोड़ दे क्योंकि आत्म-नियन्त्रण के अभाव

में तो व्यक्तित्व का सारा विकास ही अवरुद्ध हो जाएगा जिसका नतीजा यह होगा कि कोई भी समाज या राष्ट्र अपने अभ्युदय का स्वप्न भी नहीं देख सकेगा। असंयम से सदा उच्छृंखलता और अनाचार ही पैदा होते हैं। अतः किसी भी व्यक्ति समाज या राष्ट्र का विकास उसके असंयम से नहीं संयम से ही सम्भव हो सकेगा। दूसरी ओर मन पर काबू पाने के लिए व्यक्ति यदि सचेष्ट रहकर सदा प्रयास करता रहे तो मन पर पूर्णतः नियन्त्रण न पा सकने की स्थिति में भी कम से कम व्यक्ति के जीवन में नैतिकता का प्रादुर्भाव तो अपेक्षित रूप से होता ही। इसी दूर दृष्टि के कारण राष्ट्रपिता बापू अपने जीवन काल में सदैव मन के नियन्त्रण पर विशेष बल देते रहे। उनका अपना जीवन पूर्णतः सुसंयमित था एवं जन जन के जीवन को सुसंयमित व नैतिकतामय बना देने का उनका स्वप्न था। यह जानकर मुझे परम प्रसन्नता है कि अणुव्रत-आन्दोलन भी अपने मूल में मन के नियन्त्रण पर ही आधारित है क्योंकि इन व्रतों (अणुव्रतों) की स्वीकृति ही इस बात की सूचक है कि जीवन के निर्बाध व्यापारों में से व्यक्ति ने यथाशक्ति अपनी वृत्तियों का संकोचन किया है जो मन पर नियन्त्रण पाए बिना सम्भव नहीं। अतः जन-जीवन के नैतिक अभ्युदय के लिए उत्प्रेरित और आत्म-नियन्त्रण की आधार भूमि पर विकसित यह आन्दोलन अपने लक्ष्य तक पहुंचने में निस्सन्देह सफल होगा।

जन्मान्तरवाद में मेरी अटूट आस्था है। मैं इस संसार को एक सराय की भांति ही मानता हूँ। पिछले जीवन के संचित पुण्य-कर्मों से मिली मानवता को यदि हम असंयमित एवं अनैतिकतामय बना कर यों ही व्यर्थ गंवा देते हैं तो अपनी असद्वृत्तियों व अनैतिक कर्मों का फल निश्चित रूप से अगले जन्म में भोगने के लिए उत्तरदायी होते हैं। यदि एक व्यक्ति सदैव इस प्रश्न पर सतर्क रहे कि मुझसे कोई बुरा कर्म न हो जाए तो वह अपने आप पर काफी संयम प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः संयम और आचरण की पवित्रता पर क्या जैन क्या बौद्ध और क्या वैष्णव—इस देश के सभी धर्मों ने विशेष बल दिया है मगर पश्चिमी सभ्यता से विभ्रमित आज का शिक्षित-समुदाय आत्म-संयम के महत्व को स्वीकार करने को तैयार नहीं क्योंकि उसका विचार है कि इससे....

इस जन्म में कोई लाभ सम्भव नहीं।

धर्म आमतौर से व्यक्ति की धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम माना जाता है। मगर इसके साथ ही धर्म के सहारे व्यक्ति की भौतिक उन्नति की भी बहुत बड़ी सम्भावना रहती है। सत्यप्रिय व्यक्ति समाज में सदा आदर की दृष्टि से ही देखा जाता है। इसी प्रकार आज के अनैतिक युग में भी उसी दुकान पर सबसे ज्यादा ग्राहक स्वतः प्रेरणा से जाते हैं जहां भाव और व्यापारिक नीति सबके लिए समान रूप से एक होती है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने तो इस सम्बन्ध में व्यावहारिक प्रयोग करके स्पष्ट रूप से यह सिद्ध भी कर दिखाया है कि सांसारिक उन्नति के लिए भी धर्म की संयम की विपुलाचार की नितान्त अपेक्षा रहती है। अहिंसा सत्य अचौर्य नैतिकता मैत्री आदि निश्चित रूप से व्यक्तित्व को विकसित करने में सहायक होते हैं और साथ ही साथ इन सिद्धान्तों पर चलने वालों की सांसारिक रूप में यश और सम्मान तथा आर्थिक उन्नति भी हासिल होती है।

हमारा देश राजनैतिक रूप से स्वाधीन हो गया है मगर जहां तक जीवन में नैतिकता का प्रश्न है आज भी हम अनैतिकता और असंयम की गुलामी से अपने आपको मुक्त नहीं कर पाए हैं। अपनी इसी कमजोरी के कारण हमारे देश का इतना अधःपतन हुआ। [विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि देश के इस अधःपतन में किसी भी व्यक्ति या राष्ट्र का हाथ नहीं प्रत्युत नैतिकता से गिर जाने के कारण ही देश इतना पद्दलित हुआ। परन्तु इस अधःपतन के बावजूद भी प्रत्येक भारतवासी के हृदय में भारत धर्म और संस्कृति के प्रति परम्परा से चली आई अटूट आस्था वर्तमान है और इसी आस्था का यह सुफल है कि अपनी समस्त कमजोरियों के बावजूद भी आज भारत को विश्व में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

हमारे देश की यदि कोई सबसे बड़ी कमजोरी है तो वह यह है कि भारतवासी कहते हैं एक बात और आचरण करते कुछ दूसरी का। एक अमेरिकन विद्वान् ने हमारी मन स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखा ठीक कहा है कि भारतीय मन-मानस में दो मन काम करते हैं—(१) व्यक्ति का ऊपर का मन जो ऊंचे

सिद्धान्तों की आदर्श परिकल्पना लेकर चलता है। (२) नीचे का अन्तरंग मन जो जीवन के व्यावहारिक कार्य-क्षेत्र में सिद्धान्तों और आदर्शों को ताक पर रखकर बहुत ही नीचे उतर कर कार्य करता है। बातें हम बड़ी-बड़ी करते हैं पर यदि व्यावहारिक जीवन का सही अवलोकन किया जाए तो पता चलेगा कि हमारे कार्य कितने थोथे होते हैं। यदि भारत को विश्व के लिए कोई नया सन्देश देना है तो ऊपर और नीचे के मन के इस विभेद को दूर करना होगा।

धर्म और अधर्म का व्यावहारिक अर्थ यही है कि यदि हम बिना किसी दूसरे व्यक्ति के हितों को बाधा पहुँचाए अपनी प्रगति करते हैं तो हम धर्म और नैतिकता के अनुकूल माने जाएँगे। मगर यदि हम अपनी प्रगति में दूसरों के हितों पर कुठाराघात करते हैं तो हम धर्म और नैतिकता के सब स्वीकृत सिद्धान्तों के खिलाफ पड़ेंगे। अपनी स्वाधीनता-प्राप्ति के प्रथम प्रभात से ही भारत इसी आधार पर सामाजिक नैतिकता स्थापित करने के लिए कृतसंकल्प है। पंचशील में वर्णित सह-अस्तित्व के सिद्धान्त की भावनात्मक आधार-भूमि यही है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के विकास में बिना किसी प्रकार का व्यवधान या बाधा उत्पन्न किए अपनी प्रगति के लिए सतत सचेष्ट रहकर आगे बढ़ता जाए।

सामाजिक नैतिकता के क्षेत्र में जिस प्रकार हमारे देश ने विश्व को एक बहुत बड़ी देन दी है उसी प्रकार हमें व्यक्ति की नैतिकता को ऊपर उठा कर जीवन में सच्ची मानवता का संचार करना है। आज की गिरी हुई नैतिकता में हमारे उत्थान का सही रास्ता यही है कि हम सदा सचेष्ट रहकर जीवन से बुराइयों को दूर करते रहें। व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन के इस प्रकार नैतिकतामय बनने से उसका सम्पूर्ण समाज पर कल्याणकारी असर होगा। जीवन-शुद्धि के लिए चलाया गया अणुव्रतों का यह नैतिकता मूलक आन्दोलन जन-जीवन के नैतिक उत्थान में बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होगा। ऐसी ही जनोत्थानकारी प्रवृत्तियों द्वारा समाज में एक नया मानवतावादी दृष्टिकोण प्रादुर्भूत होगा जिसके सुफल स्वरूप जन-जन के जीवन में अनैतिकता के स्थान पर नैतिकता का संचार होगा। किसी के अनिष्ट चिन्तन की अपेक्षा 'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु' का व्यापक जीवन धर्म। हमारी भारतीय संस्कृति का सनातन सन्देश रहा है।

सन्त—पुस्तकें ज्ञान के भण्डार उस पुस्तक से क्या मतलब जो मानव-जीवन में सुगन्ध नहीं पैदा करती और स्वयं बोलती नहीं है।

सन्त महोदय के शब्द बड़े सारपूर्ण हैं। ग्रन्थ तो निर्जीव हैं, भले ही इनमें अथाह ज्ञान भरा हो। वे मात्र पुस्तकालय की अलमारियों की शोभारूप ही हैं, जब तक कोई प्राणवान् व्यक्ति उन्हें अपने जीवन में धारण नहीं करता है। जैन-ग्रन्थों में ठीक ही कहा गया है—'न धर्मो धार्मिकैर्विना' धार्मिक पुरुषों के आचरण में ही धर्म जीवित रहता है। वस्तुतः धर्म विषय ही आचरण का है, शास्त्रों का नहीं। उत्तम सदाचारी व्यक्ति ही धर्म को प्राणवान् और सजीव बना देते हैं। दीपक में मिट्टी के पात्र और तेल व बत्ती का नाम नहीं है, किन्तु दीप्ति ज्योति और प्रकाशयुक्त होने से ही उसका अस्तित्व है। प्रकाश-विहीन दीपक सर्वथा निरर्थक है।

अध्यात्म और लौकिक का समन्वय

धर्म के तत्त्व ऐसे होने चाहिये जो जन-साधारण द्वारा आचरण में लाये जा सकें। उसमें लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के तत्त्वों का पूरा समन्वय होना चाहिये। अगर किसी धर्म के सिद्धान्त केवल आध्यात्मिक-पारलौकिक हैं, तब वह उस ताड़ के वृक्ष के सदृश ही होगा जिसके सम्बन्ध में सन्त कबीर ने ठीक ही कहा है—

ऊँचा ऊँचा सब कोई कहै, ऊँचा मैं ताड़ खजूर।
बैठन को छाया नहीं, फल लागा है अति दूर॥

यदि धर्म केवल लौकिक ही और उसमें आध्यात्मिकता की पुट न हो तब वह स्थायी शान्ति देने वाला नहीं हो सकता। ऐसा धर्म शीघ्र ही रूढ़ियों का रूप धारण कर निर्जीव प्रेरणाशून्य और स्फूर्ति रहित हो जायेगा। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि किसी भी समाज का निर्माण केवल रूढ़ियों पर नहीं किया जा सकता। आध्यात्मिकता और लौकिकता के उचित तथा युक्ति युक्त सम्मिश्रण के आधार पर ही समाज का भवन खड़ा हो सकता है। गीता के इस वचन 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्' के अनुसार इस धर्म का

२२

अहिंसक शक्तियों का एकीकरण

—प्रो० सत्यव्रत घोष,
लन्दन विश्व विद्यालय

संसार में दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं। एक वे जो अपने मानस को आन्दोलित करने वाले विचारों को निर्भीकतापूर्वक विश्व के सामने प्रस्तुत करते हैं और जनमत तथा परम्परागत रूढ़ियों की चिन्ता किये बिना अपने जीवन में उन विचारों को ढालने का प्रयत्न करते हैं। दूसरे प्रकार के वे व्यक्ति होते हैं—जिनके मानस में ऐसी ही हिलोरें उठती हैं पर वे हिलोरें सामाजिक भय शंकाओं तथा आत्म-विश्वास की कमी के कारण बाहर नहीं आ पातीं। मानस की दीवारों से टकरा कर उसके तल में जा बैठती हैं और धीरे-धीरे समय के प्रवाह में इन हिलोरों का उठना भी समाप्त हो जाता है। बौद्धिक और सामाजिक जलवायु की धारा में ऐसे व्यक्ति अनिच्छा से बहते चले जाते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उनकी चेतना खो गई है उनकी विवेक-बुद्धि कुण्ठित हो गई है उनका चिन्तन रुक गया है पर आत्म-विश्वास की कमी के कारण यह सब कुछ अपंग हो गया है।

जब हम उपरोक्त विचार के प्रकाश में यूरोपीय देशों पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें विश्वास होता है कि युद्ध-प्रेमी और भौतिकतावादी यूरोप के मानवीय मानस के तल में अहिंसक शक्तियों की एक तरल धारा बह रही है। यूरोप के सामान्य व्यक्तियों में यह धारा शान्त-सी लगती है और बाहर से देखने पर लगता है जैसे प्रत्येक व्यक्ति विनाश की प्रवृत्तियों और साधनों के समर्थन एवं विकास में लगा हुआ है। यह एक समष्टिगत चित्र है पर इस चित्र का व्यष्टिगत पहलू इससे कुछ भिन्न है। इस चित्र में अनेक रेखायें सृजनात्मक

भविष्य में भी अणुव्रत-आन्दोलन जैसी जनोत्थानकारी नैतिक प्रवृत्तियों द्वारा जन-जन के मानस में नैतिकता का आविर्भाव कर हमें अपनी उसी विरासत पर आगे बढ़कर समस्या-संकुल युग की विषमताओं को सुलझाकर विश्व को समुचित मार्ग-दर्शन देना है।

२२

अहिंसक शक्तियों का एकीकरण

—प्रो० गणपतचन्द्र गौड़,
लखनऊ विश्व विद्यालय

संसार में दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं। एक वे जो अपने मानस को आन्दोलित करने वाले विचारों को निर्भीकतापूर्वक विश्व के सामने प्रस्तुत करते हैं और जनमत तथा परम्परागत रूढ़ियों की चिन्ता किये बिना अपने जीवन में उन विचारों को ढालने का प्रयत्न करते हैं। दूसरे प्रकार के वे व्यक्ति होते हैं—जिनके मानस में ऐसी ही हिलोरें उठती हैं पर वे हिलोरें सामाजिक भय, संकोचों तथा आत्म-विश्वास की कमी के कारण बाहर नहीं आ पातीं। मानस की दीवारों से टकरा कर उसके तल में आ बैठती हैं और धीरे-धीरे समय के प्रवाह में इन हिलोरों का उठना भी समाप्त हो जाता है। बौद्धिक और सामाजिक जलवायु की धारा में ऐसे व्यक्ति अनिच्छा से बहते चले जाते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उनकी चेतना खो गई है, उनकी विवेक-बुद्धि कुंठित हो गई है, उनका चिन्तन रुक गया है, पर आत्म-विश्वास की कमी के कारण यह सब कुछ अपंग हो गया है।

अब हम उपरोक्त विचार के प्रकाश में यूरोपीय देशों पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें विश्वास होता है कि युद्ध-प्रेमी और भौतिकतावादी यूरोप के दानवीय मानस के तल में अहिंसक शक्तियों की एक तरल धारा बह रही है। यूरोप के सामान्य व्यक्तियों में यह धारा शान्त-सी लगती है और बाहर से देखने पर लगता है जैसे प्रत्येक व्यक्ति विनाश की प्रवृत्तियों और साधनों के समर्थन एवं विकास में लगा हुआ है। यह एक समष्टिगत चित्र है पर इस चित्र का व्यष्टिगत पहलू इससे कुछ भिन्न है। इस चित्र में अनेक आत्माएं सृजनात्मक

मानवीय और अहिंसात्मक हैं। तात्पर्य यह है कि यूरोप में अनेक अहिंसक शक्तियाँ बिखरी हुई हैं। ऐसी कुछ संस्थाएं ये हैं—सोसायटी आफ फ्रेन्ड्स (क्वेकर्स) पीस प्लेज यूनियन, कृडाहोफ आई० पी० एस० पी० आदि। ऐसी अनेक संस्थाएं यूरोप में विभिन्न रूपों में शान्तिवादी काम कर रही हैं। इन संस्थाओं से सम्बन्धित लोगों में ही अहिंसा और शान्ति के प्रति गहरा लगाव नहीं है, वरन् वहां के आम लोगों में भी शान्ति और अहिंसा में गहरी निष्ठा है। परन्तु जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं आत्म-विश्वास की कमी और वायुमण्डल की क्षीणता के कारण उनकी ये भावनाएं प्रकाश में नहीं आ पाती। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है—देश-विदेश की अहिंसक शक्तियों की एकता जिसका आधार विश्वबन्धुत्व, शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना हो। दो वर्ष पहले जर्मनी में शान्तिवादियों की सत्याग्रही यात्रा, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में एटम बम के विरुद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन, दक्षिण अफ्रीका की अहिंसात्मक लड़ाई, गत वर्ष इंगलैंड में पी० पी० यू० द्वारा आयोजित अणुबम फैक्ट्री के सामने विशाल प्रदर्शन आदि अनेक घटनाएं इसका जीवन्त प्रमाण हैं कि अहिंसक शक्तियां प्रबल हो रही हैं परन्तु यह पर्याप्त नहीं है। सबसे बड़ी आवश्यकता है—एक अहिंसक वायुमण्डल का निर्माण। लोगों की सुप्त मानवीय वृत्तियों को जगाना और उससे अहिंसक आन्दोलन को बल देना। इंगलैंड का शान्तिवादी साप्ताहिक 'पीस न्यूज' निर्भीकता से अहिंसा का प्रचार कर रहा है और अपने निर्भीक लेखों में अणुबम युद्ध और अनिवार्य सैनिक सेवा का ऊंचे स्वर से विरोध कर रहा है। अनिवार्य सैनिक सेवा के विरोध में कई युवकों को जेल यात्राएं भी करनी पड़ी।

भारत और विदेशों की अहिंसक शक्तियों में पारस्परिक सम्पर्क आवश्यक है। आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत आन्दोलन केवल भारत के लिए ही नहीं अपितु सारे विश्व के लिए एक नई आशा है और इस आन्दोलन को विदेशों में आगे बढ़ाने के लिए इन संस्थाओं व्यक्तियों विद्वानों से सम्पर्क स्थापित होना आवश्यक है। वह समय दूर नहीं है जबकि विश्व के विभिन्न भागों में बिखरी हुई ये अहिंसक शक्तियां इस आन्दोलन में समाहित हो जाएंगी। विभिन्न स्थानों में टिमटिमाते हुए दीपक अणुव्रत के ही द्वारा देश और ग्राम

की सीमाओं को तोड़ कर शान्ति प्रेम सद्भावना बन्धुत्व और अहिंसा की भागीरथी प्रवाहित होगी जिसमें दुःख विषमता अशान्ति अनैतिकता एवं पीड़ा के अभिशाप सदा के लिए बह जाएंगे। आज हमारा सबसे बड़ा कर्तव्य है—इस अहिंसा की भागीरथी को धरती पर लाना इन दीपकों को एक स्थान पर लाने का प्रयत्न करना और विश्व के बिखरे भागों में शान्तिवादी बन्धुओं से आत्मीयता स्थापित करना।

२३

अणुव्रत पर अणुबम

—प्रो० प्रमथनाथ विजयवर्गीय एम० ए०

आज का विश्व एक चौराहे पर खड़ा है जहाँ से दो विपरीत दिशाओं में दो मार्ग जा रहे हैं—एक पूँजीवाद–साम्यवाद का दूसरा भौतिकवाद–अध्यात्मवाद का। एक का सम्बन्ध जीवन के बहिर्गत मूल्यों से है तो दूसरे का अन्तरंग मूल्यों से। इस सृष्टि को आज पूँजीवाद और साम्यवाद तथा भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के बीच चुनाव करना है। प्रस्तुत लेख में हमारा सम्बन्ध पहले प्रश्न से न होकर केवल दूसरे प्रश्न से ही है।

हम अणुव्रत के युग से चलकर सहस्रों वर्षों के सोपान को पार करते हुए आज अणुबम तक आ पहुँचे हैं। जिस प्रकार आज का वैज्ञानिक तत्त्व को तोड़ते-तोड़ते 'अणु' या 'एटम' तक पहुँच गया है उसी प्रकार हमारे प्राचीन तत्त्वदर्शी मनुष्य के अन्तरावलोकन करते हुए 'आत्म' तक पहुँचे थे। मैं 'ऐटम' और 'आत्म' में कोई अन्तर नहीं मानता—शब्द और भाव दोनों की दृष्टि से। शब्द की दृष्टि से तो इसलिए क्योंकि अंग्रेजी का वर्ण 'ए' हिन्दी में 'अ' का उच्चारण भी देता है और उसी भाषा का 'टी' और 'एम' हिन्दी में 'त' तथा 'म' का। भाव की दृष्टि से इसलिए क्योंकि एक (एटम) भौतिक-तत्त्व के मूल तथा अन्तरतम रूप का अन्वेषण है तो दूसरा (आत्मा) मानवीय तत्त्व के मूल तथा अन्तरतम रूप का दर्शन। गुण की दृष्टि से भी दोनों में समानता है। दोनों में ही सूक्ष्मता अदृश्यता व्यापकता एवं शक्तिमत्ता है। दोनों ही की प्राप्ति में हमारी गति बाहर से भीतर की ओर होती है। 'एटम' तक पहुँचने के लिए भौतिक तत्त्व के बहिर्रूप से चलकर एक-एक स्तर को पार करते हुए उसके अन्तर्निहित अन्तिम सूक्ष्म रूप तक पहुँचना होता है। इसी प्रकार आत्मा तक

पहुँचने के लिए शरीर से चलकर इन्द्रियों बुद्धि और पंचकोषों के स्तर चीरते हुए बढ़ना पड़ता है और जितने हम किसी पदार्थ की सूक्ष्मता की ओर बढ़ते हैं, उतनी ही व्यापकता और शक्ति की प्राप्ति बढ़ती जाती है। विज्ञान और अध्यात्म दोनों ही शास्त्र इसके प्रमाण हैं। अन्तर इतना ही है कि जहां 'एटम' के इन गुणों का प्रयोगात्मक रूप हम केवल आज ही देख पाये हैं वहां आत्मा की सूक्ष्मता व्यापकता एवं शक्तिमत्ता को हमारे महर्षि और तत्त्व-चिंतक आज से सहस्रों वर्ष पूर्व ज्ञात और अनुभूत कर चुके थे। इसीलिए कहा गया कि वह 'अणोरणीयान्' होते हुए भी 'महतोमहीयान्' है। भगवान् कृष्ण ने भी आत्मा की सूक्ष्मता एवं बाह्य प्रभाव-शून्यता में निहित उसकी शक्ति को पहचान कर ही कहा था कि—

> नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
> न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

मैं आत्मा की व्याप्ति और उसकी शक्ति का प्रमाण उसकी प्रभावशीलता में मानता हूं। आत्मा जितनी ही शुद्ध-शुद्ध रूप में होती है उसकी व्यापक प्रभावशीलता उतनी ही बढ़ जाती है। क्या कारण है कि राम की आत्मा आज भी घर-घर में अपना प्रभाव छोड़ने में समर्थ है? क्या कारण है गांधीजी के लम्बे उपवास पर उन लोगों के हृदय भी जिन्होंने कभी उन्हें देखा तक न था मन्दिरों मस्जिदों और गिरजाघरों में जाकर उनकी दीर्घायु के लिए प्रार्थना करते रो उठते थे। निश्चय ही यह उनकी आत्म-शक्ति का प्रभाव था। महात्माओं के आगे हिंसक पशुओं के भी पालतू बन जाने की जो बातें सुनी जाती हैं, उनके पीछे भी उसी आत्मिक शक्ति का चमत्कार है। वैसे तो यह आत्म-शक्ति प्रत्येक में है पर जब वह अजागृत या अविकसित अवस्था में निष्क्रिय रहती है तो उसका प्रभाव नहीं दिखलाई पड़ता। उसे सक्रिय बनाने के लिए किसी न किसी रूप में साधना की आवश्यकता होती है वैसे ही जैसे कि अणु-शक्ति को प्रभावक रूप देने के लिए उसे एक विशिष्ट जागृत एवं क्रियाशील स्थिति में संगठित करना पड़ता है।

इसी प्रकार अणु कितना सूक्ष्म अदृश्य एवं शक्तिशाली होता है इसे आज के युग में स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं। विनाश के क्षेत्र में उसके घातक प्रभाव हम देख चुके हैं और निर्माण के क्षेत्र में उसके सदुपयोग की सम्भावना हम जानते हैं। तब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि उस 'आत्म-शक्ति' और इस 'एटम-शक्ति' में क्या अन्तर है? अन्तर है और वह यह है कि जहां आत्म-शक्ति के दुरुपयोग की कोई सम्भावना ही नहीं हो सकती एटम-शक्ति का दुरुपयोग हम अपनी आंखों के आगे देख रहे हैं और उसके व्यापक प्रयोग के परिणामों की साक्षी देने के लिए स्यात् हममें से कोई न रहे। वस्तुतः आज का प्रश्न दार्शनिक नहीं है वह जीवन और मरण का प्रश्न है। हम क्या चाहते हैं—सार्वभौमिक और सार्वजनिक आत्म-हत्या अथवा 'जीओ और जीने दो'। एटम बम के स्वामियों को यह भी सोचना होगा कि क्या उनमें से किसी का भी सार्वजनिक हत्या करने का अधिकार है? आज तो लगता है कि पश्चिम के सम्पूर्ण शरीर का रक्त विषाक्त हो चुका है और विश्व की नस-नस में [illegible] प्रवेश करना चाहता है। एक स्थान पर फोड़ा उठता है उसे चीर-फाड़कर उसकी मरहम पट्टी की जाती है कि दूसरे स्थान पर उभर आता है। आखिर यह ऊपरी चिकित्सा कब तक चलेगी? इसके पूर्व कि यह विषाक्त रक्त विश्व के हृदय तक पहुंच जाये उसके सर्वाङ्गीण शोध की आवश्यकता है पर परमाणु बमों और उद्जन बमों के विषैले तत्त्वों से भरे हाथ इसे नहीं कर सकते। इसके लिए पश्चिम को एक व्रत लेना होगा वैसे ही जैसे पेट में कुछ विकार उत्पन्न होने पर शुद्धि के लिये भारतीय व्रत रख लिया करते हैं। व्रत के दो पक्ष होते हैं, भोजन का छोड़ना और सद्विचारों एवं सद्भावनाओं का ग्रहण। विश्व को भी यदि निरोग होना है तो उसे परमाणु और उद्जन बमों को छोड़कर सार्वभौमिक प्रेम विश्वास और सद्भावनाओं को अपनाना होगा। यही अणुव्रत है। सभी को सोचना होगा कि वह क्या चाहता है—जीवन या मृत्यु? विश्व को भी सोचना होगा कि वह क्या चाहता है—अणुव्रत या अणुबम?

२४

नये समाज निर्माण में अणुव्रत का स्थान

—श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

धर्म के कई लक्षण किये गये हैं। सभी अपनी जगह सार्थक हैं। पर एक लक्षण जो अत्यन्त व्यापक, सर्वथा निर्विवाद और सर्वमान्य है, वह है—'धार्यते स धर्मः' जो धारण किया जाये वही धर्म है, अर्थात् जो आचरण में लाया जाये वही धर्म का सच्चा स्वरूप है। जिस धर्म को दैनिक व्यवहार में नहीं लाया जाता, जो केवल दर्शन-ग्रन्थों और शास्त्रों में ही बन्द है, वह बुद्धि, तर्क और मस्तिष्क की ऊहापोह का विषय हो सकता है, पर दैनिक जीवन का नहीं।

धर्म जीवन में, पुस्तक में नहीं

एक बार एक सन्त के पास एक उत्साही धर्म-प्रचारक गया। अपनी धर्म पुस्तक भेंट करता हुआ बोला—'इसे पढ़िये, आपको बहुत ज्ञान प्राप्त होगा।' सन्त बड़े पहुँचे हुए व्यक्ति थे। उन्होंने पहले पुस्तक को सूंघा और फिर कान के साथ लगाया। धर्म-प्रचारक सन्तजी की इन चेष्टाओं को देख मन में सोचने लगा, यह कैसा मूढ़ व्यक्ति है? ज्ञान की भण्डार इस अद्वितीय पुस्तक को पढ़ने के बदले यह उसे सूंघ रहा है और कान के साथ लगा रहा है। कुछ देर बाद सुन्दर जिल्द बंधी पुस्तक को धर्म प्रचारक के हाथ वापस करते हुए सन्त बोले—'पुस्तक देखने में बहुत सुन्दर है, पर इसमें कोई सुगन्ध नहीं है और यह बोलती भी नहीं है।'

धर्म-प्रचारक—पुस्तक में भला कैसी सुगन्ध और कैसी बोलने की शक्ति? यह तो अनुपम ज्ञान का भण्डार है।

सन्त—मुझे ज्ञान के भण्डार उस पुस्तक से क्या मतलब जो मानव-जीवन में स्पन्द नहीं पैदा करती और स्वयं बोलती नहीं है।

सन्त महोदय के शब्द बड़े सारपूर्ण हैं। ग्रन्थ तो निर्जीव हैं, भले ही इनमें अगाध ज्ञान भरा हो। वे मात्र पुस्तकालय की अलमारियों की शोभा ही हैं जब तक कोई प्राणवान् व्यक्ति उन्हें अपने जीवन में धारण नहीं करता है। जैन-ग्रन्थों में ठीक ही कहा गया है—'न धर्मो धार्मिकैर्विना' धार्मिक पुरुषों के आचरण में ही धर्म जीवित रहता है। वस्तुतः धर्म विषय ही आचरण का है, शास्त्रों का नहीं। उत्तम सदाचारी व्यक्ति ही धर्म को प्राणवान् और सजीव बना देते हैं। दीपक में मिट्टी के पात्र और तेल व बत्ती का नाम नहीं है किन्तु दीप्ति ज्योति और प्रकाशयुक्त होने से ही उसका अस्तित्व है। प्रकाश-विहीन दीपक सर्वथा निरर्थक है।

अध्यात्म और लौकिक का समन्वय

धर्म के तत्त्व ऐसे होने चाहिये जो जन-सामान्य द्वारा आचरण में लाये जा सकें। उनमें लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के तत्त्वों का पूरा समन्वय होना चाहिये। अगर किसी धर्म के सिद्धान्त केवल आध्यात्मिक-पारलौकिक हैं, तब वह उस ताड़ के वृक्ष के समान ही होगा जिसके सम्बन्ध में सन्त कबीर ने ठीक ही कहा है—

ऊंचा ऊंचा सब कोई कहे ऊंचा मैं ताड़ खजूर।
बैठन को छाया नहीं फल लागा है अति दूर॥

यदि धर्म केवल लौकिक हो और उसमें आध्यात्मिकता की पुट न हो तब वह स्थायी शान्ति देने वाला नहीं हो सकता। ऐसा धर्म शीघ्र ही रूढ़ियों का रूप धारण कर निर्जीव प्रेरणाशून्य और स्फूर्ति रहित हो जायेगा। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि किसी भी समाज का निर्माण केवल रूढ़ियों पर नहीं किया जा सकता। आध्यात्मिकता और लौकिकता के उचित तथा सुचित मात्रा सम्मिश्रण के आधार पर ही समाज का भवन खड़ा हो सकता है। गीता के इस वचन 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्' के अनुसार इस धर्म का

थोड़ी मात्रा में भी किया हुआ पालन महान् संकट से रक्षा करने वाला होता है।

दैनिक जीवन में अणुव्रत

आचार्य श्री तुलसीजी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत में आध्यात्मिक और लौकिक धर्म तत्त्वों का सर्वाङ्गीण और सुरम्य समन्वय है। ये सिद्धान्त नये हैं ऐसी बात नहीं है। धर्म के तत्त्व और शब्द शाश्वत ही होते हैं पर उनका प्रयोग देश काल और परिस्थिति के अनुसार महापुरुषों के गम्भीर चिन्तन के फलस्वरूप ही होता है।

उदाहरण के लिये गांधीजी ने राजनीति में 'सत्याग्रह' शब्द का प्रयोग किया। इसके द्वारा उन्होंने विश्व में ऐसा अद्भुत चमत्कार किया कि भारत के इतिहास की दिशा ही बदल गई। पर क्या 'सत्य' और 'आग्रह' शब्द भारतीय दर्शन में पहले नहीं थे? क्या इन शब्दों का आविष्कार गांधीजी ने किया? नहीं शब्द अवश्य थे पर इन दोनों का समन्वय और इसके पीछे अपने सम्पूर्ण जीवन के सत्य अहिंसा के प्रयोगों का बल—यह तो गांधीजी की ही देन थी और इसीने इस एक शब्द में अणुबम से भी अधिक बल भर दिया।

इसी प्रकार 'अणुव्रत' में निर्दिष्ट पांच व्रत कोई नये नहीं हैं पर उनके प्रयोग की विधि आचार्य श्री तुलसीजी के गम्भीर चिन्तन और उदात्त जीवन के फलस्वरूप नई है। इन अणुव्रतों में से एक अस्तेय को ही लें। आज के भ्रष्टाचार कदाचार और दुराचार पूर्ण समाज में एक नागरिक का यह व्रत लेना कि वह अस्तेय-वृत्ति धारण करेगा बड़े से बड़ा प्रलोभन आने पर भी किसीके साथ छल कपट व अन्याय का व्यवहार नहीं करेगा—क्या समूचे वातावरण में विद्युत्-गति के साथ एक अनिर्वचनीय लहर पैदा नहीं कर देगा? आज हम देखते हैं कि पग-पग पर व्यापारी-ग्राहक और दुकानदार-खरीददार एक दूसरे को मूर्ख बनाने और ठगने का प्रयत्न करते हैं। इन व्रतों को दैनिक जीवन में और छोटी-छोटी बातों में डालने से चोरबाजारी रिश्वत झूठे बिल बनाने पूरा वेतन लेकर भी काम न करना झूठे सर्टिफिकेट देकर छुट्टियां लेने इत्यादि आज के शिक्षित कहे जाने वाले व्यक्तियों के छल-कपटपूर्ण व्यवहार भला कहीं

रह सकते हैं ? इस व्रत के पालन से साधक के अपने हृदय में शान्ति और राष्ट्रीय जीवन में उल्लेखनीय उज्ज्वलता आयेगी।

हिंसा बढ़ रही है

अणुव्रत में एक मुख्य व्रत अहिंसा भी है। सम्पूर्ण विश्व का वायुमण्डल आज हिंसा और प्रतिहिंसा के घात-प्रतिघात से विषाक्त है। सभ्यताभिमानी राष्ट्र प्रलयकारक शस्त्रों के निर्माण में होड़ लगा रहे हैं। ८० लाख की आबादी के शहर लन्दन को १० मिनट में भूमिसात् करने वाले उद्जन आयुध तैयार हो गये हैं जो १९४५ में जापान में नागासाकी और हिरोशिमा नगरों पर फेंके गये अणुबमों से कई गुना अधिक संहारक हैं। आज तृतीय विश्वयुद्ध की भूमिका तैयार हो रही है जो प्रसिद्ध विचारक श्री बर्ट्रेण्ड रसेल के शब्दों में एकदम प्रलयङ्कारी और मानवता का अन्त करने वाला होगा।

यह तो है सामूहिक हिंसा। व्यक्तिगत हिंसा भी शिष्ट सीमाओं को लांघ चुकी है। केवल आहार की ही नहीं। अपनी फैशन के शौक को पूरा करने के लिए मानव आज असंख्य मूक और निरीह पशु-पक्षी और कीट-पतंगों की हत्या प्रति मिनिट कर रहा है। विज्ञान चिकित्सा सौन्दर्य और गृह-शोभा इत्यादि की आड़ में किये जाने वाली हिंसा इससे अलग है। अन्य देशों की बात छोड़ें केवल भारत को ही लें। यह कितने खेद की बात है कि अहिंसा के परम पुजारी बापू जिन्होंने सांप तक को मारने का निषेध किया है—के अनुयायी बनने का दावा करने वाली आज की कांग्रेसी सरकार खुल्लमखुल्ला पशु-हिंसा को बढ़ावा देने के नये-नये ढंग काम में नहीं ला रही है ? गांधीजी के अत्यन्त समीप रह कर उनकी शिक्षाओं को अच्छी तरह समझने वाली होकर भी भारत की स्वास्थ्य मंत्रिणी राजकुमारी अमृतकौर ने राज्य सरकारों को पत्र लिखकर प्रचारित किया है कि भारतीयों के दैनिक भोजन में अन्न की मात्रा को कम करके मांस मत्स्य और अण्डों को अधिक स्थान दिया जाये नये ढंग के कसाईखाने कायम किये जावें और मछली तथा मुर्गी-पालन के लिये तालाब और मुर्गी आंगन तैयार किये जावें। मछली को मारकर खाया जाये और मुर्गी के अण्डे और मुर्गी का मांस

भोजन का अंग बनाया जाये। अंग्रेजी शासनकाल से आज गौ-हत्या अधिक हो रही है। स्कूलों की पुस्तकों में और रेडियो के प्रोग्रामों द्वारा मांस बनाने और खाने की विधि का जोरों से प्रचार हो रहा है। शहरों में मांस की दुकानें बढ़ रही हैं और युवक-युवतियों में मांस भक्षण मद्यपान और धूम्रपान तीनों का निरन्तर प्रचार हो रहा है। विवाह इत्यादि धार्मिक समारोहों में भी सामिष भोजी निरामिष भोजियों की अपेक्षा अधिक होने हैं।

इस प्रकार के तामसिक और स्वास्थ्य-नाशक आहार का परिणाम क्या है? देश में हत्याकाण्ड डाका चोरी व्यभिचार, दुराचार और अपहरण की अनियन्त्रित वृत्ति। केवल दिल्ली में ही १९४६ की हत्याओं से १९५५ में आठ गुनी अधिक हत्याएं हुई हैं और कई हत्याओं में घातकों का अभी तक पता नहीं चल सका है।

नये समाज की नींव

इस पृष्ठभूमि में आचार्य श्री तुलसीजी के अणुव्रत का एक मात्र अहिंसा-व्रत केवल लौकिक दृष्टि से ही कितना क्रान्तिकारी है। अणुव्रती को कम से कम अपने आहार-व्यवहार में तो अवश्य ही हिंसा से प्राप्त होने वाले आहार का त्याग करना होगा। इसका उसके शारीरिक सामाजिक और मानसिक सम्पूर्ण जीवन पर प्रभाव पड़ेगा।

इस प्रकार अणुव्रत आन्दोलन' आज के भारत के पतनोन्मुख समाज का एकमात्र उद्धारक व पथ प्रदर्शक है। इसमें राष्ट्रीय जीवन को एक नूतन स्वास्थ्य कर और ऊर्ध्वगामी दिशा में अग्रसर करने की प्रबल शक्ति है। इस सर्वतोमुखी उन्नति के प्रेरक अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसीजी महाराज को भगवान् चिरायु पुण्य प्रदान करें' राष्ट्र की एकमात्र यही कामना है।

२५

पलड़ा ऊँचा रखना है

—श्री यशपाल जैन
सम्पादक, जीवन-साहित्य

संसार के इतिहास में आज तक कोई भी युग ऐसा नहीं बीता जिसमें केवल सत्पुरुष ही हुए हों और न कोई ऐसा युग ही मिलता है जिसमें केवल दुर्जन ही हुए हों। सभी युगों में भले-बुरे, दोनों प्रकार के व्यक्ति पाये गए हैं पाये जा रहे हैं और आगे भी पाये जाते रहेंगे। यह भी सच है कि हर युग में ऐसे संत-मनीषी हुए [illegible] जिन्होंने अपने पुनीत जीवन और उदात्त वाणी से संतप्त व्यक्तियों को सच्चे सुख और स्थायी शान्ति का मार्ग दिखाया है। जिस प्रकार रात्रि के अन्तिम प्रहर के गहन अन्धकार को दूर करने के लिए उषा का आगमन होता है उसी प्रकार मानव-जीवन के कलुष के निवारणार्थ नीतिनिष्ठ व्यक्तियों और शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ करता है।

मर कर व्यक्ति कहाँ जाता है उसके जीवन का क्या होता है वह फिर से जन्म लेता है या नहीं आदि-आदि प्रश्न सतत रहे हैं और उनके उत्तर विभिन्न मतों के लोग विभिन्न प्रकार से देते हैं। जो हो, लेकिन एक बात में सब सहमत हैं और वह यह कि आदमी के साथ दुनिया की कोई भी भौतिक वस्तु नहीं जाती सब कुछ यहीं छूट जाता है। उर्दू के महान् कवि नजीर ने मोह-माया में लिप्त प्राणियों को चेतावनी देते हुए बड़े ही सुन्दर ढंग से कहा—'सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा।' इसी भाव को एक अन्य कवि ने दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है—

'आया था क्या सिकन्दर
दुनिया से ले गया क्या ?

वे दोनों हाथ खाली
बाहर कफन से निकले।

प्रश्न उठता है कि जब अपने साथ कुछ भी नहीं जाता तो आदमी मोह माया में इतना क्यों फंसता है और अकारण क्यों इतनी छीना-झपटी करता है ? उत्तर स्पष्ट है। इसलिये कि उसमें यह अहंकार है कि मैं कुछ हूं और महत्वा कांक्षा है कि मैं यह और वह अपने अधिकार में ले लूं।

आज की सारी व्याधियों की जड़ ये ही दो वृत्तियां हैं—अहंकार और स्वार्थ। एक तीसरी वृत्ति और है जो व्याधियों की अग्नि को सतत प्रज्वलित रखने में घी का काम करती है और वह है—यश-कीर्ति की झूठी लालसा। दुनिया का सारा खेल इन्हीं तीन वृत्तियों के बलबूते पर जमा जा रहा है। इन तीनों के हाथ में व्यक्ति कठपुतली बना रात-दिन नाच रहा है। कभी वह राजा का पार्ट अदा करता है तो कभी रंक का कभी अट्टहास करके हँसता है तो कभी दहाड़ मारकर रोता है।

कोई पूछ सकता है कि अरे आदमी ! यह सृष्टि अनादिकाल से चली आई है आगे भी चलती रहेगी। आखिर यह टिकी किस आधार पर है ? बुराई की नींव पर तो कोई भी इमारत देर तक खड़ी नहीं रह सकती। प्रश्न बिलकुल ठीक है। उत्तर है—दुनिया बुराइयों पर नहीं अच्छाइयों पर टिकी है। कौन नहीं जानता कि घृणा जड़ खोदती है प्रेम उसे जमाता है असन्तोष व्यक्ति की आंखों पर पट्टी बांधता है सन्तोष उसे विवेक से आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है भोग नीचे गड्ढे में धकेलता है, संयम ऊंचाई पर ले जाता है झूठ कायर बनाता है सत्य आत्मा का विकास करता है हिंसा बैर के बीज बोती है, अहिंसा प्रेम की वाटिका लगाती है। हर व्यक्ति के आगे दो रास्ते हैं—एक रसातल में धंसाने वाला और दूसरा है गौरीशंकर की चोटी पर चढ़ाने वाला। जो जिधर जायेगा वैसा ही फल पायेगा।

एक मूर्ख था। उसके पास कुछ भूमि थी। उसमें उसने बबूल के बीज बोए और कल्पना करने लगा कि एक दिन आम के पेड़ उगेंगे और उसे मीठे-मीठे फल खाने को मिलेंगे। उस मूर्ख की भांति आज अधिकांश लोग रसातल के

मार्ग पर चल कर गौरीशंकर की चोटी पर पहुँचने की आशा लगाते हैं। यही कारण है कि हमारा वैयक्तिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन बहुत नीचा हो गया है। हमारी आँखों पर स्वार्थ का पर्दा पड़ गया है पर जब पृथ्वी पर अन्धकार फैलता है कोई न कोई नैतिक शक्ति प्रादुर्भूत होती है—चाहे वह बुद्ध महावीर, ईसा गांधी विनोबा या तुलसी किसी भी रूप में हो।

आज की कमजोरी को दूर करने के लिए जो सत्प्रयत्न हो रहे हैं उनमें अणुव्रत विचार का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। उसका मुख्य उद्देश्य जीवन का परिशोधन करना है। वह व्यक्ति को सब कुछ छोड़कर हरि भजन की बात नहीं कहता उसका प्रेमपूर्ण आग्रह है कि जो जहाँ है वह वहीं रहे पर अपने जीवन और कार्य को अनैतिकता से दूर रखे और ऐसा प्रयत्न करे जिससे उसे दुनिया में भटकना न पड़े सुख और शान्ति का अनुभव हो। जिस प्रकार विनोबा के भूदान आन्दोलन के पीछे केवल प्रेम की शक्ति है उसी प्रकार अणुव्रत-आन्दोलन के पीछे भी प्रेम का ही आग्रह है।

आज व्यक्ति हैरान है समाज दुःखी है राष्ट्र व विश्व भय से थर-थर काँप रहे हैं और मानवता दानव की चोट के घावों से कराह रही है। क्यों? इसलिए कि आज मानव मानव नहीं रहा है। यह स्थिति बहुत दिन नहीं चलने की है। दुष्टों का पलड़ा बहुत समय तक भारी रहेगा तो दुनिया डूब जायेगी। हमें सन्तुलन रखना है। सन्तुलन ही नहीं भलाई का पलड़ा ऊँचा रखना है।

अणुव्रत-आन्दोलन में दानव को मानव बनाने के तत्व हैं। इसे गहराई से समझना है और निष्ठा से उस पर चलना है।

मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि अणुव्रत विचार उत्तरोत्तर व्यापक होता जा रहा है और सहस्रों व्यक्ति उसकी ओर आकर्षित हो रहे हैं। मेरी कामना है कि यह विचार घर-घर पहुँचे और हमारे जीवन को पाक-साफ बनाने में सफल हो।

२६

आचार्य तुलसी का अणुव्रत आन्दोलन

—श्री पुष्पेन्दु
सहसम्पादक—नवजीवन, लखनऊ

अणुव्रत-आन्दोलन हमारे देश के लिए आज नया या अपरिचित अभियान नहीं है। प्रारम्भ में जब मेरे कुछ मित्रों में अणुव्रत की चर्चा चली तो कुछ ऐसा लगा कि यह नाम आणविक अस्त्रों के इस अणु-युग की देन होगी। किन्तु सच तो यह है कि श्रमण संस्कृति में इसका उल्लेख कई स्थलों पर किया गया है। आचार्य तुलसी से पूर्व यह बात किसी के मस्तिष्क में भी न आई कि व्रतों को लेकर कोई सफल आन्दोलन चलाया जा सकता है अथवा सार्वजनिक रूप से उनके प्रचार के हेतु सुव्यवस्थित अभियान चलाया जा सकता है। आज तो आचार्य तुलसी के लगभग ६५० साधु-साध्वियां और हजारों अनुयायी इस आन्दोलन के सर्वतोमुखी प्रचार के लिए कटिबद्ध हैं।

कुछ मित्रों ने यह भी विचार प्रकट किया कि व्रत तो सभी महान् हैं फिर उनके पहले अणु विशेषण लगाना अनुचित है। सरसरी तौर से सुनने पर बात ठीक ही लगती है किन्तु तनिक रुक कर विचार करने पर विशेषण की उपयोगिता पर अवश्य ध्यान आकर्षित हो जाता है। समाधान के लिए कुछ समय तो मैं भी यह सोचता था किन्तु मैंने अधिक अच्छा यह समझा कि स्वयं आचार्य तुलसी के पास जाकर इस सम्बन्ध में उनके विचार प्राप्त किए जायें।

आचार्य श्री तुलसी के सामीप्य में आने तथा उनके कुछ प्रवचनों में उपस्थित रहने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। अणुव्रत का जो कायाकल्प उनके द्वारा हुआ वह सचमुच आज की पीड़ित मानवता के लिए वरदान है। धर्म-ग्रन्थों के दायरे में रुके पड़े प्रवाह को आचार्य श्री ने एक लोकोपकारिणी गति दी मानो

भगीरथ गंगा को धरती पर उतार लाये हों।

श्रमण साहित्य में अणुव्रत पांच बताये गये हैं जो अहिंसा सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के नाम से विख्यात हैं। साधना की प्रारम्भिक स्थिति में इन्हें अणुव्रत तथा मुनि अवस्था तक आते-आते इन्हें पांच महाव्रत की संज्ञा दी गई है।

आचार्य तुलसी ने सर्वसामान्य के लिए इन व्रतों को पुनः व्यवहारिक बनाने के साथ ही सम्प्रदायगत सीमाओं के बन्धन से उन्मुक्त कर दिया है। उनके विचार से कोई भी व्यक्ति आत्म-विकास के हेतु किसी भी प्रकार के सम्प्रदाय में नहीं बांधा जा सकता। अणुव्रत का मूलाधार जीवन को प्रगति की ओर ढालने के लिए संकल्प करना है। सदाचार या संयम के लिए कोई भी सीमा निश्चित करने पर वह एक के लिए व्यवहारिक तो दूसरे के लिए अव्यवहारिक है, एक के लिए सरल तो दूसरे के लिए कठिन है। जिस प्रकार अभ्यास के प्रारम्भ में कोई बन्धन नहीं लगाया जा सकता उसी प्रकार प्रगति की ऊंचाई पर भी कोई अन्तिम सीमा नहीं लगाई जा सकती क्योंकि साधना की कठिन से कठिन सीमा भी किसी के लिए सरल हो सकती है। विकास का प्रारम्भ या समाप्ति क्रमानुसार बढ़ने का सक्रिय संकल्प है। यह ससीम से असीम की ओर बढ़ने का सतत प्रयास है। आचार्य तुलसी के अनुसार साधना को पुरुषार्थ की सजीवता चाहिए, मौखिक सिद्धान्तों की निर्जीविता नहीं।

आचार्य तुलसी के मतानुसार अणुव्रत नाम से व्रत की महत्ता में न्यूनता नहीं, बल्कि परिणाम की व्यवहारिकता है। गंगा जल को कटोरे में रखने पर भी वही गुण रहते हैं, जो साक्षात् गंगा में। आकाश सुई के छिद्र में आकाशीय गुणों से युक्त है और विशाल कुएं की दिवारों से घिर कर भी वही आकाश है। छोटा या बड़ा विस्तार की अपेक्षा है, स्वभाव की अपेक्षा नहीं।

प्रश्न यह उठता है कि क्या यह जरूरी है कि कोई व्यक्ति अणुव्रत में दीक्षित होकर ही अपनी प्रगति का पथ चुने। आचार्य तुलसी का ऐसा कोई आग्रह नहीं। उनके अनुसार व्रत आत्म-सुधार की है सम्प्रदाय में दीक्षित होने की नहीं। व्यक्ति किसी भी धर्म या सम्प्रदाय की सीमा में चले किन्तु उसे अपने

जीवन के नैतिक धरातल को उठाना होगा। भयाक्रान्त मानवता को निर्भीक जीवन बिताने के लिए भय से भागना नहीं होगा बल्कि संयमपूर्वक सामना करना होगा। अतः संयम को सुव्यवस्थित प्रगति देना ही अणुव्रत-आन्दोलन का मूलाधार है।

अणुव्रत की जीवनचर्या संयम का क्रमिक अभ्यास और अणुव्रत का आदर्श आत्मावलोकन है। आत्म-विकास में जो कमी महसूस होती हो उसे दूर करने के लिए असफलताओं के बीच से गुजर कर सफलता को प्राप्त करना होता है। हां प्रयत्न में ईमानदारी अवश्य अपेक्षित है।

मैंने प्रश्न किया कि ऐसा व्यक्ति जो शराब, गोश्त या ऐसी ही अन्य वस्तु के बेचने का पेशा करता है क्या अणुव्रत में उसे भी कोई स्थान है? मुझे उत्तर मिला कि वह बेचने के लिए बाध्य है किन्तु पीने या खाने के लिए तो उसका बन्धन नहीं है। वह स्वयं उपभोग न करने के संयम को ग्रहण कर सकता है। अणुव्रत का उद्देश्य आदर्श की ओर उन्मुख होकर चलना है। उन्मुख पथिक लक्ष्य से कितनी ही दूर क्यों न हो यदि ठीक दिशा में चल रहा है तो लक्ष्य के समीप आयेगा ही किन्तु विमुख मनुष्य लक्ष्य के कितने ही समीप चलना आरम्भ करे, वह तो दूर ही होता जायेगा। महत्त्व पथ पर आगे या पीछे होने का नहीं है अपितु उन्मुख और विमुख होने का है।

आचार्य तुलसी और उनके संघ के सभी साधु पैदल चलते हैं। एक नगर से दूसरे नगर के बीच कितने लोग निवास करते हैं उन मार्गों ग्राम और ग्रामवासियों तक भी तो पहुंचना है उन्हें। वे एक पैर लखनऊ में रख कर दूसरा पैर कलकत्ते में नहीं रखना चाहते। वे तो मार्ग में पड़ने वाले जीव-जन्तुओं की गतिविधि को भी ठोकर नहीं करते हुए छोटे-छोटे डगों से आगे बढ़ना चाहते हैं और अणुव्रत-आन्दोलन भी तो छोटी छोटी सीढ़ियों से ही ऊपर उठता है।

अणुव्रत-आन्दोलन में एकरूपता और एक व्यवस्था लाने के लिए यद्यपि कुछ विधि विधान भी हैं किन्तु उन सबमें बाहरी अनुशासन की अपेक्षा आत्मानुशासन ही अधिक है। आत्म-विकास को आत्म-नियन्त्रण ही आगे बढ़ा सकेगा। एक प्रसंग में आचार्य श्री ने कहा—आत्म अनुशासन की भावना स

हीन व्यक्तियों द्वारा राजकीय अनुशासन की कितनी उपेक्षा होती है, सब लोग यह पत्रों में पढ़ते ही हैं। आज परीक्षाएं पुलिस के पहरे में होने की नौबत आ गई है। फिर भी अध्यापकों को भय बना रहता है कि कोई अनैतिक कार्य से रोके जाने वाला असन्तुष्ट विद्यार्थी छुरा न भोंक दे। इसको हम विद्यार्थियों का विद्या श्रम मानें या किसी जीवन की लूट-मार। इस देश में एक धर्म या दल के लोग दोष निराकरण के लिए दूसरे धर्म या दल की आलोचना नहीं करते, बल्कि स्वार्थ के लिए गाली-गलौज करते हैं जहां लोग स्वर्ग और धर्म प्राप्ति की मरीचिका में बड़े-बड़े दान की घोषणायें करते हैं पूजा प्रतिष्ठायें करते हैं, किन्तु द्वेष-लिप्सा के कारण समाज में विषाक्त वातावरण उपस्थित कर देते हैं।

एक अन्य प्रसंग में आचार्य श्री ने कहा कि यह आन्दोलन राज्याश्रित या पूंजी-आश्रित नहीं है, न हो सकेगा और न यह किसी सम्प्रदाय विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। यह तो चरित्र-गठन का एक आध्यात्मिक अभियान है और जन-जन के लिए है।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने एक स्थल पर आन्दोलन के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए कहा है कि मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता तो इस बात की है कि इस आन्दोलन ने सार्वजनिक रूप ले लिया है। मैं समझता हूँ कि अब लोगों में ये भावनाएं नहीं रह गई हैं कि यह कोई साम्प्रदायिक आन्दोलन है। इस आन्दोलन का एक सार्वजनिक रूप ही इसके सुनहरे भविष्य का सूचक है।

●

२७
नैतिक प्रवृत्तियों में अणुव्रत

—श्री रिषभदास रांका
सम्पादक जैन जगत

प्राणीमात्र में सुख की इच्छा पाई जाती है और हर एक सुख-प्राप्ति का प्रयत्न करता है पर सुख की इच्छा रख उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने वालों में से बहुत कम लोग सुखी पाये जाते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि सुख प्राप्ति के मार्ग में भूल हो रही है तभी इच्छा और प्रयत्नों के बावजूद भी बहुत कम लोग सुखी हैं। सुखी बनने के दो मार्ग हैं। एक तो अपने सुख के लिए दूसरे को दुःखी न बनाना और दूसरा अपने सुख के लिए दूसरे के सुख की परवाह न करना। दूसरे को दुःख होता हो तो भी उसे दुःख देकर अपने आप को सुखी न बनाना। एक में सबके प्रति समता का व्यवहार है दूसरे में अपने और अपनों के प्रति आत्मीयता और दूसरे जो अपने नहीं हैं उनके प्रति परायापन तथा दूसरे मार्ग में सबके प्रति समता और आत्मीयता का व्यवहार है। पहला मार्ग व्यवहारियों का तथा दूसरा सतों का है।

व्यवहारिक लोग ऐसा मानकर ही चलते हैं कि अपने आपको सुखी बनाना हो तो दूसरों का शोषण किये बिना सम्भव नहीं। हम जितने अधिक लोगों के परिश्रम का लाभ उठाएंगे उतने ही अधिक सुखी होंगे। दूसरों के परिश्रम का अधिक से अधिक लाभ उठाने का साधन है—सम्पत्ति। वह जितनी अधिक एकत्र होगी, हम उतने ही अधिक सुखी होंगे। इसलिए चाहे जिस मार्ग से क्यों न हो सम्पत्ति एकत्र की जाये। उसे एकत्र करने में दूसरे का शोषण हो या सुख भोगने में दूसरे के परिश्रम का अपहरण करना पड़े तो वह भी किया जावे। इसमें सुख-प्राप्ति का साधन सम्पत्ति माना जाता है जब कि सन्त

सद्‌गुणों के विकास को सुख का साधन मानते हैं।

अनेक विचारकों ज्ञानियों तथा सन्तों ने सुख के साधनरूप सद्‌गुणों की खोज की और व्यक्ति तथा समूह के सुख के लिए जिन पांच सद्‌गुणों को प्रमुख स्थान दिया वे अहिंसा सत्य अस्तेय अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य हैं। सभी ने इन गुणों को मानव जीवन तथा मानवी समाज के क्षेम के लिए आवश्यक माना है। इनके बगैर मानव जाति में समता न्याय शान्ति और सबको विकास करने के लिए समान मौका मिल नहीं सकता।

सभी धर्म वाले तथा विचार वाले यही चाहते हैं कि एक ऐसा युग आए जिसमें शान्ति सुख समता न्याय और सभी को विकास करने का समान मौका मिले। पर ऐसी स्थिति लाने के लिए किस मार्ग को ग्रहण करें कौनसा साधन काम में लाएं, इसमें धार्मिकों तथा विचारकों में मतभेद हो सकता है पर संत और ज्ञानी तो यही कहते हैं कि अनुभव का राजमार्ग सद्‌गुणों को अपनाना ही है लेकिन धार्मिक कहलाने वालों में सन्तों के लिए आदर होते हुए भी जीवन में उनके बताये हुए मार्ग से सुखी बना जा सकेगा ऐसी निष्ठा का अभाव पाया जाता है। सन्तों को नमस्कार करने उनकी पूजा करने उनकी जय-जयकार मनाएंगे पर उनके बताए मार्ग पर चलने में कल्याण है ऐसा नहीं मानेंगे। उनकी पूजा तथा नमस्कार और आदर प्रदर्शित करने में कल्याण है और इससे हमारे पाप धुल जाएंगे हम सुखी बन जाएंगे ऐसा मानकर मानवी सद्‌गुणों को अपनाना जरूरी नहीं मानते।

हम यह तो मानते हैं कि सुख भले कर्मों का परिणाम है और उसकी हमें चाह भी है, पर भला काम करना नहीं चाहते। अणुव्रत-आन्दोलन भूदान आन्दोलन या व्यवहार शुद्धि आन्दोलन आदि मानवी सद्‌गुणों का पालन किये बिना—उन्हें जीवन-व्यवहार में लाये बिना क्षेम नहीं होगा इस निष्ठा को जागृत करने वाले आन्दोलन हैं।

जितने भी मानवी सद्‌गुण हैं उन्हें अपनाकर जीवनचर्या बनाये बिना हम तथा समाज सुखी नहीं बन सकता। अणुव्रत में कम से कम जितना पालन संभव हो उतने पालन का संकल्प कर आगे बढ़ने को कहा गया है।

अणुव्रत-आन्दोलन में कई विचारकों को खतरा लगता है, क्योंकि वह सम्प्रदाय विशेष का शस्त्र है और उसके संचालक एक विशिष्ट सम्प्रदाय के आचार्य हैं। यों तुलसीगणीजी ने अणुव्रत-आन्दोलन को व्यापक रूप देकर अपनी उदार भावना प्रकट की है। वे कहते हैं कि जाति लिंग सम्प्रदाय या धर्म का भेद न रख कर यह मानव जाति के लिए है और अणुव्रतियों के लिए जो नियम बनाये हैं, व व्यापक हैं। फिर भी कई मित्रों को शंका है कि उनका भले ही उदारता का चोला हो पर अन्तर में संकुचितता—साम्प्रदायिकता है। हमारी नम्र मान्यता यह है कि मनुष्य और वह भी ऐसा व्यक्ति जो अपनी जिम्मेदारी को समझकर एक व्यापक आन्दोलन चला रहा है यदि वह दम्भी होगा तो उसका दम्भ प्रकट हुए बिना नहीं रह सकता। इसलिए वे जो काम कर रहे हैं वह यदि उचित और अच्छा हो तो उनका साथ दिया जाए और उनका अधिक व्यापक बनाने में हम योग दें। उनमें कोई ऐसी बात हो कि वह अयोग्य हो तो हम उन्हें दूर करने में भी साधन बन सकते हैं।

फिर आचार्य तुलसी एक सन्त हैं। सन्त की साधना से वे अपरिचित होंगे ऐसा नहीं कहा जा सकता। वे बड़प्पन सम्प्रदाय या अपने धर्म के प्रचार के लिए यदि इस आन्दोलन को चलाने का प्रयत्न करेंगे तो निश्चित ही वे अपनी साधना में आगे नहीं बढ़ सकते। पर हमारा जो कुछ उनके साथ सम्पर्क आया हमें ऐसा ही लगा कि वे सन्त हैं और साधना का पूरा ख्याल रख कर साव धानी बरतते हैं। वे इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि प्रतिष्ठा बड़प्पन या सम्प्रदाय का मोह साधना में बाधक है और व जो बड़ा काम करना चाहते हैं उसको सीमाबद्ध करने वाला है। इसलिए उनका प्रयत्न है कि यह आन्दोलन मानव जाति में सद्गुणों की वृद्धि करने वाला व्यापक बने और हमारे देश में चलने वाले भूदान व्यवहार-शुद्धि अणुव्रत-आन्दोलन एक दूसरे के पूरक बन कर भारत में ही नहीं मानव मात्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध हों तथा मानव जिस सुख की खोज में गलत रास्ते जा रहा है वहाँ से मुड़कर ठीक रास्ते लगे और सुखी बने।

हमारी समाज के प्रेमियों से प्रार्थना है कि वे इन भारतीय आन्दोलनों

में इसलिए योग दें कि यदि भारत ने संसार का मार्गदर्शन न किया तो हिंसा सबका नाश करने के लिए मुंह बाये खड़ी है। उससे संसार को बचाया नहीं जा सकता। इसलिए व्यक्ति समाज राष्ट्र तथा मानव जाति के कल्याण के लिए भारतीय ऋषि ज्ञानी और सन्तों ने जो काम शुरू किये हैं, उन्हें आगे बढ़ाने में सक्रिय योग दें।

इन तीनों आन्दोलनों के संचालकों की भूमिका भिन्न-भिन्न है। आचार्य विनोबाजी भक्त हैं केदारनाथजी ज्ञानी हैं और आचार्य तुलसीगणीजी संयमी। यद्यपि तीनों के निर्णय एक ही स्थान पर पहुंचते हैं, पर भूमिका में अन्तर रहने के कारण कहने के तरीके भिन्न-भिन्न होते हैं।

विनोबाजी सबभूतों में भगवान के दर्शन करते हैं। दुःखितों का दुःख उनकी बर्दाश्त के बाहर है। इसलिए जिसके पास नहीं है उसे दे, जिसके पास वस्तु है उसे देने को कहते हैं, पर देते समय कर्तव्य समझ कर दो अर्थात् किसी प्रकार की अपेक्षा न रख कर समानता भाव से देने को कहते हैं। उन की शर्त है देने वाला अहंकार में नहीं डूबता और लेने वाला दीन नहीं बनता। भूदान सम्पत्ति दान श्रमदान जीवन दान के द्वारा आत्मीयता का विकास करना चाहता है और सबमें ऐसी भावना प्रकट करना चाहता है कि जिससे समाज से शोषण मिट जाये सब लोग भाई भाई व कुटुम्बी की तरह रहें मिलजुलकर सबके दुःख दूर करें। भूदान द्वारा मानव सद्गुणों का विकास चाहता है।

केदारनाथजी मानवीय व्यवहार में जो अशुद्धि आई है—धर्म की बड़ी-बड़ी बातें और चर्चा करने वाले धार्मिक लोग भी व्यवहार में ऐसा ही मानते हैं—व्यवहार झूठ के बिना चलता नहीं उसे वे अपने अनुभव से बहुत ही अयोग्य रूप मानते हैं। उनके ज्ञान के अनुभव पुष्ट होने से वे मानव जाति को इस तरह गलत रास्ते पर जाते देखकर उनका विवेक जगाना चाहते हैं। वे बताते हैं कि सत्य समता अपरिग्रह अपाधिन उचित परिश्रम, ब्रह्मचर्य, प्रेम, बन्धुता आदि सद्गुणों पर ही संसार के व्यवहार चल रहे हैं। लेकिन मनुष्य ने मानवनिष्ठता पर से भी श्रद्धा खो दी है वह उसमें आए और अपना जीवन

व्यवहार शुद्ध बनाकर मानव अपना विकास करे। ज्यों-ज्यों जीवन शुद्ध होगा मानव और समाज का कल्याण होगा।

तुलसीगणीजी समता के लिए त्याग और संयम को अपनाने को कहते हैं। अहिंसा या समता का पालन संयम के बिना संभव नहीं। इसलिए मनुष्य संयम और त्याग की ओर बढ़े, यह आवश्यक है। वह कुछ न कुछ थोड़ा ही क्यों न हो, पर संकल्प करे, निश्चय करे कि मेरा साध्य प्राणीमात्र के प्रति सम भावना है, उस ओर बढ़ने के लिए मैं कम से कम इतना तो करूंगा ही। इसमें समता संयम और त्याग के प्रति निष्ठा रखकर इस मार्ग से अपनी शक्ति के अनुसार आगे बढ़ने का निर्देश है। जिसके जीवन में समता का अनुष्ठान होगा वह व्यक्ति असत्य, शोषण परिग्रह तथा अब्रह्मचर्य को कैसे श्रेयस्कर मान सकता है। उसे इस काम में बढ़ना है और वह अणु से प्रारम्भ कर यहां तक बढ़े, ऐसी अपेक्षा है। ये अणुव्रत चूंकि उसको उद्देश्य की समता की ओर कदम बढ़ाना है इसलिए संयम और त्याग को जीवन में लाते हैं और वह व्यक्ति अपना और समाज दोनों का श्रेय साधता है। इसमें संग्रह को स्थान न होने से शोषण आप ही आप कम हो जाता है और परिणाम वही आता है जो विनोबा या किशोरलालजी लाना चाहते हैं।

२८

सच्चा मानवत्व

—श्री गोपीनाथ 'अमन'

अध्यक्ष—जन सम्पर्क समिति, दिल्ली

रम्भ हुआ तो बटवारे के साथ और दूसरे महायुद्ध की समा
१९। ऐसी दशा में यों कहना चाहिए कि स्वतन्त्रता नैतिक
ठ हारकर आई। कहा गया है कि युद्ध में उतना मनुष्य का
जितना कि मानवता का होता है। अंग्रेजी में तो कहावत ही
प्रेम में सब कुछ ठीक है। भारत के जो सिपाही पहले महायुद्ध
देश के अन्य देशों में होकर आये थे उन्होंने गांव में फिर
वातावरण का थोड़ा बहुत पश्चिमी रंग दिया। दूसरे महायुद्ध
और भी गहरा हो गया। चोर-बाजारी भी दूसरे महायुद्ध
नैतिक पतन में यदि कुछ कसर रह भी गई तो वह देश
री कर दी। युद्ध की नियमित हिंसा से भी बढ़कर विभाजन
मित हिंसा थी। उसका विवरण दे कर पवित्र पन्नों को
चाहता।

आखिर महात्मा गांधी की प्राण लेने वाली साबित हुई। गांधीजी
के पश्चात् हिंसा का कुछ बल तो रुका परन्तु हृदय से हिंसा
कि गांधीजी को सन्देह था उसी प्रकार हिन्दू-मुस्लिम दंगा
और सिक्खों में तथा हिन्दू-अहिन्दुओं में वैर-विरोध में वह
ति में आचार्य श्री तुलसी ने सन् १९४९ में अणुव्रत-आन्दोलन
कार गांधीजी ने कहा था कि सत्याग्रह पुरानी चीज है उसी
श्री तुलसी ने भी कहा कि अणुव्रत प्राचीन है, परन्तु जैसे

महात्मा गांधी ने सत्याग्रह को नया सामूहिक रूप दिया उसी प्रकार आचार्य श्री तुलसी द्वारा अणुव्रतों को नया रूप दिया गया है। महाव्रती होना तो सबके बस की बात नहीं क्योंकि उसके नियम बहुत कठिन हैं परन्तु अपना अपने समाज और देश यहां तक कि समस्त मानव जाति का उत्थान चाहने वाला यदि थोड़ा साहस करे तो अणुव्रती तो बन ही सकता है। बात यह है कि जीवन को हम किस दृष्टि से देखते हैं। यदि उसका लक्ष्य खाओ पीओ और मौज करो है यदि मनुष्य केवल बिना पूंछ का पशु है, यदि भौतिकवाद सत्य है तो फिर नैतिक विचार हमारे लिए मौलिक नहीं रहते। भौतिकवाद में भी कई रूप हैं। एक तो वह जो चार्वाक का मत है—

'यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्,
ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्'

और अब तो 'घृतं पिबेत्' के स्थान पर 'सुरां पिबेत्' होना चाहिए। दूसरा रूप वह है जिसमें कुछ न कुछ आत्म-त्याग का अंश तो है, परन्तु सत्य और अहिंसा को समाज-निर्माण का मूल आधार नहीं माना गया। अणुव्रती के लिए सत्य और अहिंसा को समाज का मूलाधार मानना आवश्यक है। इसीमें अपरिग्रह भी आ जाता है चूंकि परिग्रह और हिंसा की सीमाएं मिलती हैं। हिंसा का रूप भी असत्य की ओर सूक्ष्म से सूक्ष्म हो सकता है। रुपये का एक आना ब्याज लेने वाला मांस मदिरा से कितना ही परहेज करता हो और कितना ही सादा जीवन व्यतीत करता हो परन्तु वह अणुव्रती नहीं हो सकता। यदि कोई रेस के घोड़ों की पार्टियों पर रकम देकर अपने आपको अणुव्रती समझे तो वह ठीक नहीं। दफ्तर में केवल रिश्वत लेना ही भ्रष्टाचार नहीं बल्कि सात घण्टे में केवल दो घण्टे काम करना भी भ्रष्टाचार है। अतः जो व्यापारी कर्मचारी मजदूर या सरकारी नौकर इस आन्दोलन में आते हैं, उन्हें बहुत समझ-बूझकर आना चाहिए।

अणुव्रत-आन्दोलन को भी आज वही खतरा है जो महात्मा गांधी के सत्याग्रह आन्दोलन को था। कलकत्ते में सत्याग्रही कहलाने वाले दो दलों में जब

२६

अणुव्रत : आज की परम आवश्यकता

—श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार
सम्पादक सन्मार्ग

अणुव्रती संघ भले ही हमें अपरिचित, अद्भुत या सर्वथा नवीन प्रतीत होता हो, किन्तु वस्तुतः यह न तो कोई नवीन वस्तु है और न अद्भुत। समय समय पर इस व्यवस्था का प्रचार पहले भी किया गया है और आज भी देश या अन्य देशों में विभिन्न रूपों में किया जा रहा है। मुख्य रूप में मैं अणुव्रती संघ के दो उद्देश्य समझता हूँ—

१ त्याग और संयमपूर्वक जीवन।

२ अनैतिकता एवं अनाचार से मुक्ति।

मानव-जीवन के दो पहलू होते हैं—सामाजिक और निजी—व्यक्तिगत। भारत के प्राचीन ऋषियों ने दोनों कर्तव्य बताये हैं। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान पाँच नियम हैं। इन नियमों या व्रतों का उद्देश्य निजी—व्यक्तिगत जीवन की उन्नति करना है। ये पाँचों नियम मानव की उन्नति में प्रधान सहायक होते हैं। इसमें सन्देह नहीं, किन्तु स्मृतिकार भगवान् मनु कहते हैं—

'यमान् सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्।'

(अ० ४ श्लो० २०४)

इसका भाव यह है कि यमों का पालन नित्य करें, केवल नियमों का नहीं। जो मनुष्य केवल नियमों का पालन करता है, यमों की उपेक्षा कर देता है —

जब इन वस्तुओं के पालन के लिए समाज या सरकार को अधिक कठोर बनना पड़ता है। युद्धकाल में ज्यों-ज्यों पदार्थों का अभाव बढ़ता गया त्यों-त्यों सरकारें राशन व कन्ट्रोल के नियम बनाती गईं। इन नियमों का मुख्यतः यही उद्देश्य था कि जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएं हर एक नागरिक पूर्ण कर सके। इसीलिए भारत के प्रधानमन्त्री और निम्नस्तर के एक व्यक्ति के लिए राशन की समान मात्रा नियत की गई। कपड़ा, मिट्टी का तेल, चीनी आदि के लिए भी मात्राएं नियत कर दी गईं ताकि कुछ लोग उनसे वंचित ही न रह जाएं।

यह राशन या कन्ट्रोल केवल भारत में ही नहीं चलाया गया। अन्य देशों में भी देश की असाधारण स्थिति को देखकर कुछ नियन्त्रण लगाये गये थे। स्वयं इंगलैंड में रोटी, चाय, तम्बाकू और चीनी या कपड़े की मात्रा न केवल नियत ही कर दी गई थी बल्कि काफी घटा भी दी गई थी। चीज थोड़ी थी, मांग अधिक थी। सम्पन्न लोग पैसे के बल पर अधिक चीजें ले लें तो गरीब की हालत दयनीय हो जाए, इसलिए सरकार को अधिकतम मात्रा नियत करनी पड़ी जिससे अधिक कोई न ले। युद्ध के बाद भी इंगलैंड की सरकार ने अपना निर्यात व्यापार बढ़ाने तथा आयात व्यापार को कम करने के लिए अनेक प्रकार के कठोर बन्धन लगाए। माल वहां तैयार होता था परन्तु इंगलैंड के बाजार में कम बिकता था, विदेशों में निर्यात हो जाता था क्योंकि इंगलैंड को विदेशी मुद्रा की आवश्यकता थी। इंगलैंड की जनता उन वस्तुओं के बिना वर्षों तक काम चलाती रही। यह भी एक सीमा तक अपरिग्रह या अणुव्रत है।

प्रश्न यह हो सकता है कि जब अवसर पड़ने पर सरकार कन्ट्रोल या राशन की व्यवस्था कर ही देती है तब अणुव्रत की आवश्यकता क्या है? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है कि अभी तक मनुष्य में वह त्याग की सामाजिक भावना उत्पन्न नहीं हुई जो उसे स्वयं अपरिग्रह के लिए प्रेरित करे। राजकर्मचारी स्वयं कमजोरियों के पुतले हैं। उनकी कमजोरियों से लोग अनुचित लाभ उठाते हैं और नियम का उल्लंघन करते हैं। राज-दण्ड के भय से वे बचने की व्यवस्था कर लेते हैं। परिणाम यह होता है कि कन्ट्रोल व राशन की पद्धति शिथिल और बदनाम हो जाती है। राज-नियम हृदय को नहीं बदलता है इसलिए

आचार्य श्री तुलसी के अणुव्रत का दूसरा अर्थ चरित्र सम्बन्धी नैतिकता है। देश के स्वाधीन होने के बाद तो हम आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में और एकदम अमीर बनने की धुन में भूल गये हैं कि देश का नैतिक व चारित्रिक पतन जिस तजी से हो रहा है वह राष्ट्र को दुर्बल निस्तेज और निर्वीय बना देगा। आध्यात्मिकता या नैतिकता का सिलसिला समाज में से लोप होता जा रहा है। शायद सरकार नैतिकता की ओर ध्यान देना अपने कर्तव्य से बाहर समझती है। इसीलिए मैं आचार्य श्री तुलसी के चरित्र सम्बन्धी व्रतों को बहुत अधिक महत्त्व देता हूं। नैतिक उत्थान की जिस नई भूमिका का वे सूत्रपात कर रहे हैं उस पर चलकर भारत अपने गौरव की रक्षा कर सकेगा अन्यथा हमारा भारत भारत न रहेगा। वह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका बन जाएगा या फ्रांस बन जाएगा जहां पैसा या वासना तथा भोगमय जीवन ही आदर्श है।

अणुव्रत कभी-कभी कठोर और अव्यवहारिक दीखते हैं, किन्तु सच्चाई यह है कि आचार्य तुलसी परिस्थिति और मानव की कमजोरी को अनुभव करते हुए काफी अपवाद भी रखते गये हैं। वर्तमान अणुव्रत चरम सीमा नहीं हैं वे तो केवल उस दिशा की ओर ले जाने के लिए प्रथम सोपान का काम करते हैं जिसकी ओर हमारे आचार्य और ऋषि मुनि ले जाना चाहते हैं।

मंगलमय भगवान् इस आन्दोलन को सफल करने के लिए जनता में भावना उत्पन्न करें, मेरी उनके निकट यही प्रार्थना है।

१०

विश्व-शान्ति का महायज्ञ : अणुव्रत

—श्री रामेश्वर प

आज समूचा विश्व युद्ध और शान्ति मरण और जीवन की दो प
खड़ा है। नभ-मण्डल के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक अणु जहर
मेघ मानसून समूची सभ्यता को मरण दिलाने के लिए पल-पल प्रतीक्षा
है। संस्कृति और सभ्यता के ठेकेदार स्वार्थ और दम्भ में मदमस्त या
पी जाने में प्रयत्नशील हैं। सागर के धीरे धीरे गम्भीर वक्ष के नीचे दे
मुखी फट रहे हैं। अन्तरिक्ष की सघनता से आग बरसने का भय जन-
मानस को आतंकित किये हुए है।

गत दो विश्व युद्धों की भयावहता और हिरोशिमा-नागासाकी प
हरएक मानवता के जीवन के लिए एक बड़ी चुनौती सिद्ध हो चुकी है
और रात धरती की बज्र-सी छाती को फोड़कर मानव मात्र का पेट भरं
किसान जिस समय अपने छोटे से बालक को गोदी में लेकर उसकी
को निहारता है उस समय युद्ध की कल्पना उसे जीवित ही मार जाता है
खून-पसीना एक करके वर्षों का भार ढाकर व्यालू के लिए बैठने वाला
जिस समय आकाश में शान्ति की मनहारिणी बूंदों के स्थान पर धंधा
चमक देखता है तो रोटी छोड़ देता है। सुन्दर शिशु की कल्पना मे
गर्भिणी जिस समय बमों की आवाज सुनती है तो जीवित ही मर जा

कौन नहीं जानता कि युद्ध संस्कृति सभ्यता व मानवता सभी को बर
कर डालता है। किन्तु शक्तिशाली गुण इन सबसे परिचित होकर भी
स्वार्थ पर स्थित हैं। बड़े-बड़े राष्ट्र वैज्ञानिकों का सहारा लेकर नि

अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण में रत है। इस प्रकार मानवता की हत्या की नित-नई योजनाएं निर्मित होती जा रही हैं। वैसे तो सभी राष्ट्र एक स्वर से स्वीकार कर चुके हैं कि तीसरा युद्ध विश्व के विनाश का कारण होगा। किन्तु फिर भी युद्ध की समस्या का हल आज तक कल्पनाओं के गर्भ में पड़ा सिसक रहा है। इन सबका एक बड़ा कारण है—भौतिकवादी दृष्टिकोण। हर राष्ट्र यही समझता है कि उसका दृष्टिकोण सही है और दूसरे का गलत। यही कारण है कि हर राष्ट्र केवल अपनी ही बात मनवाने का यत्न करता है और फिर उसमें सफल न होने पर दूसरे का शत्रु बन बैठता है। फलतः द्वेष बढ़ता जाता है अपने-अपने पक्ष के गुटों का निर्माण होता है और उसके लिए भी बड़ा राष्ट्र छोटे राष्ट्र को हजम कर जाने का प्रयास करता है, कर भी जाता है। सबका मूल कारण है—अध्यात्मवाद पर भौतिकवाद की विजय।

ऐसे अनैतिकता की ओर बढ़ते युग में सदा-सदा से भारत नैतिकता का सन्देश देता आया है। आज फिर इसी देश से विश्व-शान्ति का घोष गूंजा है। अणुव्रत-आन्दोलन व्यक्ति से लेकर समाज, समाज से लेकर राष्ट्र और राष्ट्र से लेकर सृष्टि भर में नैतिकता के बीज बोने में संलग्न है जिससे सारा विश्व का हर व्यक्ति निर्भय होकर रह सके किसी को किसी का भय न हो। कोई किसी को भयभीत न करे, सभी आपस में मित्र हों सभी का जीवन शान्तिमय हो।

भौतिकवादी दृष्टिकोण है युद्ध से मरने का भय है इसलिए युद्ध न हों आध्यात्मिक दृष्टिकोण है—'युद्ध मानवता का हत्यारा है अनैतिक है इसलिए वह न हों'। पहले दृष्टिकोण में यदि एक राष्ट्र अपनी सुरक्षा (अपनी दृष्टि में) कर लेता है तो युद्ध और शान्ति का उसके लिए कोई महत्त्व नहीं किन्तु दूसरे दृष्टिकोण में अपनी सुरक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रश्न उठता है नैतिकता का। वह चिर-स्थायी होता है। यही कारण है कि वह सच्चा समाधान भी है।

आज हमारे देश के हजारों कार्यकर्ता युग प्रवर्तक महान् दार्शनिक आचार्य श्री तुलसी द्वारा उद्घोषित अणुव्रत-आन्दोलन में जुट पड़े हैं। देश के महान् अणुव्रत विचारक मुनि श्री नगराजजी एवं विख्यात शतावधानी मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी जैसे सन्तों का जीवन निजत्व कार्यों में व्यतीत न होकर भारतीय

३१

अणुव्रती संघ की झलक

—श्री लक्ष्मीचन्द जैन

भौतिकवाद व बाह्य आडम्बर के थपेड़ों में फंसकर मानव आज दिन प्रतिदिन चिन्ताओं से नई-नई व्याधियों से व्याकुलता व उपद्रवों से हिमाद्रि के उत्तुंग शृंग के बजाय नर्क के गर्त में गिरता जा रहा है। इन्सानियत सीमित बन चुकी है। फैशनपरस्ती के वशीभूत होने से मानवता का हृदय खोखला-सा हो रहा है। लालसा व प्रलोभन का प्रवाह नित्य प्रखरता लिए बह रहा है। चरित्र नीति संयम और त्याग के अभाव में सही पथ से विमुख हो जाने पर भूल-भुलैया के जंजाल में फंस जाने से मानव जाति ने आज अपना बहुत कुछ खो दिया है। भले ही भौतिकता के आधार पर इसमें वह अपना विकास और भला समझे लेकिन वास्तव में जब तक मानवीय सिद्धान्तों की हृदय में अनुभूति नहीं होगी तब तक इच्छाएं नियन्त्रित नहीं होंगी। संयममूलक भावना का जहां अपने जीवन पथ में प्रदर्शन नहीं हुआ वहां वास्तविक मानवता का प्रस्फुटन कहां ?

दुनिया में आज विज्ञान के नये-नये प्रयोगों के दुरुपयोग से नित्य नये दुष्कांड हो रहे हैं। लाखों की सम्पत्ति व्यय में लुटाई जा रही है। पर सच्चा विज्ञान वास्तव में है तो बन्धुता में समता में सहिष्णुता में और ज्यादा कहें तो सत्याग्रह और संयम के प्रखर प्रवाह में जिसमें अहिंसा निहित है। दुनिया के समक्ष आज जितनी भी [illegible] समस्याएं हैं उन सबके दुष्परिणामों का मूल कारण है—अनैतिकता याने चारसौबीसी। अगर व्यावहारिकता में धार्मिकता नीति और संस्कृति का पुट होता व्यापारिक नीति में प्रामाणिकता होती व्यक्ति-व्यक्ति में भ्रातृत्व होता राजकीय क्षेत्रों में ईमानदारी के प्रयोग होते तो भला इतना

समाज के व्यक्ति को अणुव्रतों के नियमों की शृंखला में जुड़ने का पूरा अधिकार है। देश में बढ़ी हुई अनैतिकता, रिश्वतखोरी, अप्रामाणिकता आदि को मिटाकर जन-जन के हृदय में नैतिकता का संचार करने से ही विश्व शान्ति सम्भव है, अन्यथा नहीं। आज ही विज्ञान के नवीन चमत्कारों से दुनिया प्रभावित होकर रह जाय पर यदि शान्ति की पुनः प्रतिष्ठा करनी है तो हमें नैतिक आन्दोलन में सक्रिय बनना ही होगा और इसीमें हमारा और राष्ट्र का भला है।

होंगे। क्योंकि महात्मा की सबसे छोटी इकाई और चिरस्थायी वस्तु अणु ही है जिसका स्वरूप प्रकाश है। अणुबम में जिन अणुओं का सन्निवेश होता है वे मिश्रित अणु हैं। अणु को वैज्ञानिक बुद्धि और मन से समझने के प्रयास में है जबकि साधु, सन्त, ऋषि, मुनि और दार्शनिक आत्मा और हृदय की मूक दिव्य वाणी प्रेम से समझने और समझाने के प्रयास में हैं। वैज्ञानिकों ने अणु के विनाशकारी स्वरूप का ही विकास किया है जबकि आचार्य श्री तुलसी ने जनता के समक्ष अणु के कल्याणकारी स्वरूप के प्रयोगात्मक परीक्षण व प्रदर्शन किये हैं।

अणुव्रत आन्दोलन अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही है। इसीलिए उसके भविष्य को भलीभान्ति हृदयंगम कर उसके भविष्य का स्वरूप समझकर दृढ़ता के साथ उस पर बढ़ते रहने का साहस धारण करना होगा। साधारण जनता अभी अणुव्रत की सम्भावनाओं का आकलन नहीं कर सकेगी। साधकों को सर्वस्व बलिदान करके समस्त मानवता को आगे विकास के पथ पर बढ़ाना ही होगा। इस महान् कार्य का उत्तरदायित्व साधकों पर ही है। जनता पूरी शक्ति के साथ अणुव्रत का चिन्तन करने के लिए तत्काल अवस्था में असमर्थ है। उसकी शक्तियां शिक्षा-दीक्षा के अभाव में प्रसुप्त हैं, उन्हें जगाना ही अणुव्रत का ध्येय है।

आज शिक्षा का जो अभाव है सो तो है ही पर जो कुछ शिक्षा है भी, उसका प्रवाह भी उल्टी दिशा में है। आज की शिक्षा अध्यात्म-विरोधी है विनाशकारी है अशोभनीय है। आज शिक्षा संघर्ष सिखाती है। उसे प्रेम स्नेह साधना सत्य योग दर्शन अध्यात्म पर विश्वास नहीं। अभी जो अणुव्रत के भविष्य की कल्पना प्रस्तुत कर रहे हैं, सम्भव है कुछ तार्किक बुद्धि वालों का उस पर विश्वास ही न हो पाये, पर जिनके शरीर के भीतर आत्मा और हृदय नाम की कोई अलौकिक दिव्य वस्तु विद्यमान होगी उन्हें तो हमारे प्रतिवेदन पर कुछ विचार करना स्वाभाविक ही होगा।

जीवन में व्रत का वही स्थान है जो धर्म के क्षेत्र में सत्य का होता है। अणुव्रत की व्याख्यात्मक परिभाषा कुछ इस प्रकार से अपना स्वरूप धारण कर लेगी

की अमृतमयी धारा का आँखों के खारे पानी के रूप में कल्याणी शक्ति के चरणों में समर्पित करके अपने-अपने (मानवी हत्या के प्रयास में किये गये) पापों का प्रायश्चित करेंगे।

अणुव्रती साधना के बल पर मृत्युञ्जयी हो सकेगा। वह अन्तर्यामी भी बनेगा। अणुव्रत का व्रती मानव परिस्थितियों का दास नहीं परिस्थितियों का स्वामी होगा। उसका मानस-तत्त्व इतना पवित्र और निर्मल होगा कि उसके मानस-पटल पर स्वयं अपने जीवन की भविष्य सम्बन्धी तथा आगामी विश्व सम्बन्धी सामूहिक समस्याओं के व्याख्यात्मक उत्तर स्वतः स्वलिपि में अंकित हो जायेंगे।

जाति को सामूहिक रूप से और व्यक्ति को उसके सीमित जीवन के क्षेत्र में विवशताओं निराशाओं और मजबूरियों से मुक्त करने की दिशा में अणुव्रत आन्दोलन एक दैवी शक्ति ही प्रमाणित होगा। क्या सामाजिक क्या राजनैतिक क्या धार्मिक वर्तमान समय में सभी मान्यताएं पुरानी पड़ गई हैं। उन पर रूढ़िवादिता का आवरण पड़ गया है। अणुव्रत उनको हटाकर एक स्वच्छ और शक्तिशाली मानव समाज की स्थापना के प्रयास में लगा है। यदि अणुव्रत की दिशा किन्हीं विशेष कारणों से अवरुद्ध न हुई तो यह निश्चित जैसा ही है कि मानव-समाज पूर्णतया विवशता के बन्धनों से मुक्त हो जायेगा।

अणुव्रत कहता है कि दूसरों के हित-साधन के लिए स्वयं तपस्या करो। इस दिशा में वह सर्वोदय की इस कल्पना से बहुत आगे है कि सबका उदय हो यही हमारी कामना और प्रयास है। जब अणुव्रत की कल्पनाएं साकार होंगी तो वर्तमान की अधिकांश मान्यताएं समाप्त हो जायेंगी जाति पांति के अस्तित्व ही नहीं रहेंगे सामाजिक अत्याचारों को वैवाहिक प्रथा के आवरण में ढक कर नहीं रखा जा सकेगा। गृहस्थ जीवन का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से व्यवहार करते समय विवशता के बन्धन से अथवा आवश्यकता की पराधीनता से बाध्य न होगा। अवांछनीय और अयोग्य तथा अनियमित प्राणियों के संरक्षण-भार से पृथ्वी स्वतः मुक्त हो जायेगी क्योंकि उस समय हमारा लक्ष्य सन्तति-उत्पादन अथवा काम-वासना की पूर्ति या मनुष्य की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि

करता ही नहीं होगा। तब हमारी मान्यता होगी हजारों मनोरथों से एक मौन मात्र गुना अच्छा है।

अणुव्रत की भावना भविष्य में हमें इतनी शक्ति प्रदान करेगी कि हमारी आत्मा की प्रतीक्षा मृत्यु का भी करती रहेगी। हम बिना पत्र-व्यवहार किये हजारों मील पर बैठे हुए अपने आत्मीय मित्र की भावनाओं से परिचित हो सकेंगे। युद्ध, अनावृष्टि, महामारी, दुष्काल की संभावनाएं समाप्त हो जाएंगी। चूंकि हम अपने स्वयं की व्यक्तिगत प्रकृति से भी अनभिज्ञ हैं, फिर विशाल विश्व-व्यापी प्रकृति के रहस्य को समझ सकने का प्रयास निष्फल ही होगा। मात्र या केवल बौद्धिक वैज्ञानिक, प्रकृति के वास्तविक रहस्य को समझ सकेगा यह असम्भव नहीं कठिन अवश्य है। प्रकृति को समझने के लिए केवल मस्तिष्क की ही नहीं समस्त व्यापक चेतना का ज्ञान व सामञ्जस्य होना भी अनिवार्य है।

अणुव्रत भविष्य में समाज से शोषण और हिंसा को समूल मिटाने के पक्ष में है। अणुव्रत के प्रत्येक सदस्य को अपने [illegible] वह वर्तमान व्यवस्था के अन्दर किसी भी परम्परा अथवा किसी भी पक्ष के अन्तर्गत क्यों न हो उस मार्ग से ही अपना यह ध्येय बना लेना है उसे प्रतिज्ञा कर लेनी है कि हमारी सभी प्रकार की वर्तमान शक्ति व सामग्री भविष्य के निर्माण के लिए है। कल्याणकारी भविष्य का निर्माण करने के लिए हम अपने वर्तमान का सर्वस्व न्यौछावर व बलिदान करने के लिए सदैव तत्पर व आतुर रहना होगा। हिंसा-मुक्त समाज के निर्माण में जो जितना अधिक सहयोग देगा उतनी ही अधिक उसकी कीर्ति भविष्य के निर्माणकारी इतिहास में स्वयं अंकित हो जायेगी। अभी तो पृष्ठभूमि ही तैयार हो रही है। हम सभी साधनों को उसके लिए हर प्रकार का मूल्य चुकाने के हेतु सदैव प्रस्तुत रहना ही चाहिए। सुखशान्तिदायक हमारी बहुत प्राचीन और सर्वधर्मसमन्वय अवस्था है इसी को पृथ्वी पर अवतरित कर स्थापित कर देना हमारा लक्ष्य है। हो सकता है सैद्धान्तिक दृष्टि से किसी अणुव्रती का दूसरे अणुव्रती से कुछ मतभेद हो अथवा दोनों की बुनियादी भावना में पर्याप्त अन्तर भी हो किन्तु फिर भी क्या हुआ दोनों सत्य के मार्ग पर सही दिशा में हो सकते हैं। दोनों के प्रेमपूर्वक हर प्रकार के सहयोग के साथ अपने-अपने पथ पर

चलते हुए परीक्षण के द्वारा प्राप्त सत्य को स्वीकार करते हुए तथा अपने अनुभवों को अपने जीवन की कसौटी पर पुष्ट करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते रहना चाहिये।

लेख के अन्त में हम फिर एक बार समस्त आत्मीय स्वजनों से कहना चाहते हैं कि प्रेम-राज्य ही हमारा लक्ष्य है। हम उसके लिए पीढ़ी तथा जन्म जन्म तक प्रयत्न करते रहेंगे। प्रेमराज्य ही हमें अमरत्व प्रदान कर सकेगा। अणुव्रत साधना है और प्रेम राज्य लक्ष्य। इसी वर्तमान रोगी और सन्तप्त मानव समाज के कल्याणकारी श्रेष्ठ अणुव्रत समाज का निर्माण व विकास होगा। आमूल सामाजिक क्रान्ति ही इसका एक उपाय है। अणुव्रत की भावना तथा सर्वोदय की भावना दोनों के प्रयत्न इस दिशा में अग्रगामी प्रयास हैं। हम व्यक्ति की पवित्रता के लिए व्रत का अनुष्ठान करें, मानवीय कल्याण के लिए अणु के ज्ञान को प्रकाशित करें।

४३

आत्म निरीक्षण का अवसर

—श्री रामहरण भारती
एम० ए०, बी० टी० विद्यावाचस्पति

अणुव्रती-संघ की स्थापना के द्वारा आचार्य श्री तुलसी ने समय की मांग को पूरा करके मानव-समाज के लिए एक महान् निर्माण कार्य किया है। गांधीजी ने अपने जीवन-काल में सर्वोदय विचारधारा का जो प्रचार किया उसकी आवश्यकता उनके बलिदान के पश्चात् और भी अधिक हो उठी। गांधीजी देश के विभाजन के विरुद्ध थे हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए वे निरन्तर प्रयत्नशील रहे तथा राजनीति को वे धर्म का ही एक अंग मानकर चलते थे। उनके जीवन का एक-एक कार्यक्रम आध्यात्मिकता की विशाल भित्ति पर आधारित था। वे मानवता तथा भारतीयता के प्रतीक थे। उनके राम राज्य की कल्पना एक आदर्श राज्य की कल्पना थी।

गांधीजी अहिंसा तथा सत्य के पुजारी थे। उनके आश्रम में प्रातः सायं प्रार्थना का उच्चारण होता था। उसमें ग्यारह व्रतों पर दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा की जाती थी और वे ग्यारह व्रत इस प्रकार हैं —अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह शरीर-श्रम अस्वाद सर्वत्र भय-वर्जन सर्व-धर्म-समानत्व स्वदेशी-स्पर्श भावना तथा नम्रता। इन उक्त ग्यारह व्रतों का आधार भारतीय यम नियमों पर है। बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म में भी इन पर अत्यन्त बल दिया गया है।

द्वितीय महायुद्ध के परिणामस्वरूप संसार में अनैतिकता का विषैला वातावरण फैल गया। वैसे तो प्रथम महायुद्ध के समय में भी यह भावना लोगों में अंकुरित हुई तथा प्रथम महायुद्ध के पश्चात् मन्दी तथा बेकारी का प्राबल्य इसी

भाव का साथी है। व्यापारी वर्ग अवसर की प्रतीक्षा में रहता है। द्वितीय महा युद्ध के अवसर पर तो वस्तुएं एकाएक बहुत मंहगी हो गईं। वस्तुओं के भाव और चौगुने हो गए। रुपए का मूल्य गिर गया। लोगों की क्रय-शक्ति गिरती गई। व्यापारी वर्ग तथा ठेकेदार वर्ग में कमाने की प्रवृत्ति तथा अवसरवादिता के दर्शन हुए। वस्तुएं तथा अन्न सामग्री बाजार से धीरे धीरे खिसकने लगी तथा स्टोरियों ने अपने-अपने गोदाम भरने आरम्भ कर दिए। सरकारों को परिस्थिति से तंग आकर नियन्त्रण (कन्ट्रोल) का आश्रय लेना पड़ा। जो भी वस्तु सरकारी नियन्त्रण में आती वह शीघ्र ही मण्डी से लुप्त हो जाती। अन्न सामग्री तथा दैनिक प्रयोग की वस्तुएं नियन्त्रित मूल्य पर मिलनी कठिन हो गई। मध्यम वर्ग के लिए जीवन-यापन की विकट समस्या हो गई। अच्छा घी तथा दूध मिलना कठिन हो गया। मूंगफली के तेलों का प्रचार बढ़ गया। बंगाल का अकाल उसी समय की उल्लेखनीय घटना है।

कुछ वर्षों तक चोरबाजारी का बोलबाला रहा। आज भी चोरबाजारी पनप रही है। बात-बात में असत्य की शरण लेना लोगों का दैनिक कार्य बन गया है। गान्धीजी की पुकार का लोगों पर इतना प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि वे राजनीति के कार्यों में उलझे हुए थे। धार्मिक क्षेत्र में वे हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझते थे तो भी उन्होंने नैतिकता की ओर जनता का पर्याप्त ध्यान खींचा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में अनैतिकता के पनपने को बहुत क्षेत्र मिल गया। पद-लोलुपता तथा स्वार्थ की भावना अब और दिखाई देने लगी। अब तक जिन लोगों ने देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना सब कुछ लुटाया था उनमें से अधिकतर आज अवसर आने पर अपनी सेवाओं का अधिकाधिक पुरस्कार पाने के इच्छुक रहने लगे। इस पारस्परिक होड़ में कांग्रेस तथा अन्य संस्थाओं में पैसे वालों का, नकली सदस्यों का, शोर मचाने वालों का तथा नारे लगाने वालों का प्रभुत्व बढ़ने लगा और आज ८, १० वर्षों में अवस्था यह हो गयी है कि दैनिक जीवन में बिना झूठ, बिना रिश्वत तथा बिना चोर-बाजारी के कार्य चलना कठिन हो गया है।

आचार्य श्री तुलसी ने यह सब कुछ देखा तथा सुना और उनके मन में एक टी

उथल-पुथल हुई । वे धार्मिक वातावरण से उद्विग्न तथा खिन्न हुए तथा उन्होंने अपने कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व का ध्यान करके अपने अनुयायियों तथा मुनियों में विचार को प्रस्तुत किया और उनका यही विचार आगे चलकर अणुव्रती संघ नामक आन्दोलन के रूप में जनता के सम्मुख आया । गत चार-पांच वर्षों में इस विचारधारा को लेकर भारत तथा अन्य देशों में काफी प्रतिक्रिया हुई । अभी ऐसा आज की परिस्थिति में शक्य है किन्तु सभी अपने आपको परिस्थितियों से जकड़ा हुआ तथा विवश पाते हैं । गांधीजी के बलिदान के पश्चात् हुए सर्वोदय सम्मेलनों में की गई प्रतिज्ञाओं में भी इन्हीं परिस्थितियों तथा कर्तव्यों का उल्लेख मिलता है । राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद तथा आचार्य विनोबा भावे के साथ आचार्य श्री तुलसी की भेंटों में भी इसी भावना के दर्शन मिलते हैं । गत चार वर्षों में अणुव्रती संघ के जितने भी अधिवेशन हुए उन सभीमें आज के समस्या तथा शासनकर्ताओं के समय के विधान नियमोपनियम तथा उनकी अन्तर भावना के सिद्धान्तात्मक तथा व्यावहारिक पक्ष पर काफी मन्थन किया है । अनेक अणुव्रतियों तथा आचार्यों ने इस सम्बन्ध में भाग लेने के पश्चात् अपने जिन अनुभवों का वर्णन तथा उल्लेख किया उससे यह स्पष्ट पता चलता है कि अणुव्रत विचारधारा का निरन्तर प्रचार बढ़ रहा है । मार्ग में अनेक बाधाएं तथा प्रलोभन उपस्थित हैं किन्तु आन्दोलन को इन सब परिस्थितियों का सामना करना होगा । अन्त में विजय निश्चित है ।

वर्ग की महत्त्वपूर्ण समस्या है। इसका समाधान भी अणुव्रती संघ उपस्थित करता है। संघ अपने व्रतियों तथा साधकों से यह आशा करता है कि दैनिक जीवन में चोर-बाजारी रिश्वत असत्य आदि का त्याग करना है। मारवाड़ी समाज धन-संचय व्यापार की चोरबाजारी आदि के लिए बहुत बदनाम है। आचार्य श्री के अनुयायियों का बड़ा भाग यही समाज है। आचार्यश्री और उनके साधु व साध्वी-वर्ग की प्रेरणा से इस समाज में नव चेतना का उदय हो रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि जन जागृति उत्पन्न की जाए। मानव निर्माण के कार्यक्रम नैतिकता का अपनाया जाए। हमें पश्चिमी सभ्यता की तड़क-भड़क तथा भोग विलास के जीवन को छोड़ना होगा आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होना होगा। जीवन-निर्माण तथा जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि आत्म-निर्माण की ओर आज का मानव-समाज अग्रसर हो। आचार्यश्री तुलसी के शब्दों में—आत्म-निर्माण के बिना न तो शान्ति मिल सकती है और न सही अर्थ में जीवन का स्तर ऊंचा उठता है।

मानव-समाज के लिए निर्माण यह आवश्यक है कि समाज का प्रत्येक वर्ग—व्यापारी वर्ग, शिक्षक वर्ग महिला वर्ग सेवक वर्ग शासक वर्ग कर्मचारी वर्ग, मजदूर वर्ग तथा नवयुवक और बालक—सभी में यह भावना भर दी जाए। हमें शिक्षा की वर्तमान पद्धति को बदलना होगा। नवयुवकों से बढ़ती हुई नास्तिकता तथा भौतिकवाद की भावना को रोक कर रचनात्मक कार्य में लगाना होगा। महिला वर्ग में जागृति उत्पन्न करनी होगी। समाज की कुरीतियों को हटाना होगा। ये सभी कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनके लिए मूक कार्यनिष्ठ मूक सेवकों तथा साधकों की आवश्यकता है। हमारा सौभाग्य है कि आचार्य श्री तुलसी के नेतृत्व में सैकड़ों साधु-साध्वियों का एक-एक क्षण इसी भावना के प्रचार में लगता है। उनका जीवन संयम का जीवन है। इन साधुओं और साध्वियों में अनेक कवि हैं लेखक हैं प्रतिभावान् व्याख्याता हैं, दार्शनिक विद्वान् हैं तथा हैं निष्प्रमाद व कार्यशील नवयुवक। इनके होते हुए अणुव्रती संघ तथा उसका आन्दोलन कभी रुक नहीं सकता। आवश्यकता है इस कार्यक्रम पर चलने की।

आज का दिन अणुव्रतियों तथा साधकों के लिए विशेष रूप से आत्म निरीक्षण का दिन है। हमें वर्ष भर का लेखा-जोखा लेना है। हममें से जिन्होंने व्रत लिया है अथवा जिन्होंने साधना की है उन्हें ली हुई प्रतिज्ञाओं को स्मरण करते हुए अपने भीतर यह विचार करना है कि वे कहां तक अपने उद्देश्य और जीवन में—व्रत-पालन के क्रियात्मक जीवन में सफल हुए हैं। संघ और आन्दोलन की सफलता सदस्यों की संख्या पर निर्भर नहीं करती अपितु उनके व्यक्तिगत जीवन के त्याग तथा आदर्श पर चलने से ही आंकी जा सकती है।

हम निराशावादी नहीं हैं। आज सारा संसार भौतिकवादी विचारधारा से संत्रस्त हो रहा है। तथाकथित प्रगतिशील राष्ट्रों की प्रजा भारत की ओर आशापूर्ण दृष्टि से देख रही है। भारत को अपने उत्तरदायित्व का ध्यान करते हुए फिर से प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति की ओर मुड़ना होगा। आशा ही नहीं विश्वास है कि प्रत्येक अणुव्रती इस अवसर पर आत्म-निरीक्षण तथा आत्म चिन्तन की ओर प्रवृत्त होगा। आवश्यकता है इस आन्दोलन को घर-घर पहुंचाने की। इसके लिए कठिन परिश्रम करना होगा और अपने जीवन को ऐसा बनाना होगा कि दूसरों पर बिना कहे हमारे जीवन का प्रभाव पड़े। यह हमारे लिए परीक्षा-काल है। परीक्षा में हम सफल हों ऐसी मेरी हार्दिक कामना है।



३४

अणुव्रत और समाज

श्री रमेशकुमार जैन

युग ने करवट ली है। जमीन फटी रूढ़ियाँ उसमें समा गईं। समाज का युग-युग पुराना सड़ा गला ढाँचा चरमरा उठा। प्राचीन ग्रन्थी व्यवस्थाओं के खिलाफ मनुष्य ने एक आवाज हो विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। मानव ने सोचा जिन्दगी खिले हुए गुलाब की तरह महकने लगी है। सुख ऐश्वर्य भोग-विलास, सब आदमी के इशारों पर नाचने लगे। परिवर्तन के इस जलजले का प्रभाव आदमी के दिल और दिमाग पर पूरी तरह छा गया। आदमी तरक्की की दौड़ में कमर कसकर दौड़ने के लिए तैयार हो गया। जमाने के बदलते हुए रवैये ने उसे बताया कि आज जमाने के अनुसार न चलने वाला इन्सान इन्सान नहीं जानवर है। आचार-विचार एक ढोंग है, धर्म एक ढकोसला है, झूठ है। छल झूठ, कपट धोखा, विश्वासघात सब जायज हैं, सब उचित हैं। दुनिया में कोई चीज पाप नहीं। भगवान आदमी का भ्रम मात्र है, धोखे की कल्पना है। भगवान आज इन्सान है, उसका पैसा है, उसकी बुद्धि है। इन्सान अपनी शक्ति और सामर्थ्य के बल पर सचमुच भगवान की तरह पुजाने लगा। उसका तरक्की पसन्द दिमाग जमाने की राह में मृग बच्चे की तरह कुलाचें भरने लगा और हड्डी और मांस का बना इन्सान सचमुच ही भगवान नाम की चीज को मिटा कर खुद भगवान बन बैठा। भगवान को कुर्सी से हटा कर खुद उसके स्थान पर बैठने की तैयारी करने लगा। उसने जब अपना आपको टटोला तो अनुभव किया कि उसकी बुद्धि इस दुनिया के मुकाबले में एक नई दुनिया बना लेने के स्वप्न देखने लगी है। जिसके लिए वह आकाश पर नए चांद और सूरज उगाएगा। यह हवा

यह गरमी यह प्रकृति सब बदल कर नए ढंग से नए साँचे में ढाल कर वह इस दुनिया में विहार करेगा और उसका तूफानी दिमाग हर सूरत से विजय को अपने कदमों में डालने को लपक उठा। विज्ञान जैसी अद्भुत शक्ति का आविष्कार करके वह फूला नहीं समाया। यह उसका प्रथम प्रयत्न था जिसमें उसने अपनी सारी शक्ति को लगा दिया था। आदमी की ताकत से दूनी चौगुनी अठगुनी शक्तियाँ बटोर कर उसने मशीन जैसी एक नई चीज का आविष्कार किया। संसार उसका यह करिश्मा चौंधकी निगाहों से देखता रह गया। सैकड़ों-हजारों आदमियों का काम एक मशीन करने लगी। हजारों आदमी बेरोजगार हो गए। लाखों आदमियों के मुँह की रोटी का कौर छीन लिया। सैकड़ों स्त्रियों के माथ का सिन्दूर पुछ गया।

आदमी अपनी विजय पर मुस्कराया। उसने सोचा कि निश्चित ही संसार और जिन्दगी की एक बहुत बड़ी चाबी उसके हाथ में आ गई है। यह जीत उसकी अभूतपूर्व जीत है। लेकिन वह यह नहीं समझ सका कि इन्सान होकर उसने इन्सानियत का गला घोंट दिया है। पेट का घर भर कर हजारों इन्सानों को उसने रोटी के एक-एक टुकड़े के लिए मोहताज बना दिया है। विजय के मद में चूर अपनी शक्ति के अभिमान में चूर इन्सान इन्सान की यह करुण दारुण स्थिति नहीं देख सका। उसने फिर इरादा किया कि अब की बार फिर वह अपनी शक्ति का करिश्मा दिखाएगा। अभी तक किसी के हाथ में न था उसने बाकी जिन्दगी और मौत को वह अपने हाथ की कठपुतली बना कर देखा और उसका दूसरा प्रयोग 'एटमबम और हाईड्रोजन बमों' के रूप में हुआ। बड़ी निर्दयता और क्रूरता से उसने आदमी की जिन्दगी से खिलवाड़ करना शुरू कर दिया। इन्सानों की लाशों पर वह कदम रखता हुआ तबाही के आगे बढ़ा। परन्तु आत्मा ने अन्दर बैठा जगता सत्य अधिक समय तक अपनी यह दुर्दशा न देख सका। आदमी ने देखा कि यह उसकी तैयार की हुई मशीन ही उसकी स्वयं की मौत का कारण बन गई है। यह एटमबम और हाईड्रोजन बम जितनी सरलता से दूसरे इन्सानों के प्राणों के साथ खेल खेल सकते हैं उतनी ही सरलता से यह उसकी स्वयं की जिन्दगी को भी सहज

नष्ट कर डालने की क्षमता रखते हैं तो आदमी अपने ही अस्त्र से आहत अपनी ही विजय से पराजित और अपने ही दम्भ से दुखी आत्मा के उस सत्य की शीतल मधुर छांह में एक पल बैठ सकने को व्याकुल हो उठा। वह पुनः उसी अज्ञात शक्ति ईश्वर की ओर झुकने लगा जिसको कुछ दिन पहले अपनी विजय के नशे में उसने उपेक्षा से दूर फेंक दिया था। आदमी अपने वर्तमान जीवन से त्राण पाने को छटपटा उठा। खून देखकर जब उसका खून खौला नहीं उसका खून बहने की बजाय भय से गलने लगा। तो उसे खून की कीमत मालूम होने लगी। वह अहिंसा का आश्रय लेने को दौड़ पड़ा। उसने देखा कि इन्सान का हृदय शस्त्र और हिंसा से नहीं बल्कि अहिंसा और स्नेह से जीता जा सकता है तो वह अपनी भूल पर पश्चात्ताप के आंसू बहाने लगा।

ऐश्वर्य व भोग विलास ने जब उसके सुन्दर शरीर को खोखला कान्तिहीन और भोंडा बना दिया और असमय में ही उसे मौत की खाई में धकेल दिया तो उसे सच्चरित्रता और नैतिकता की कीमत मालूम होने लगी। जब उसने देखा—औरत की बाह्य कमनीयता एक लिपा-पुता झूठा कृत्रिम सौन्दर्य मात्र है तो वह हृदय के वास्तविक सौन्दर्य की प्राप्ति के लिए विकल हो उठा। विकृत असीमित इच्छाओं का विस्फोटीकरण जब उसकी जड़ें खोदने लगा तो उसे उन्हें सीमित करने की फिकर सवार हुई। इन्सान बाह्य आडम्बर त्याग आत्मा की पवित्रता से गठबन्धन करने को उतावला हो उठा। वह समझ गया कि अब तक किया गया उसका अपनी शक्तियों का दम्भ केवल एक उसकी भटकन थी उसका वह गर्व झूठा था खोखला था नहीं तो उसका अस्तित्व इस संसार में एक चींटी के बराबर भी नहीं है। उसकी यह सब इमारतें उसके लिए कब्र खोदने को फावड़ा लिए बैठी हैं तो वह धर्म की जय जयकार करने लगा। आदमी नास्तिक से आस्तिक होने लगा।

धर्म अनुशासन में उसने श्वास लेना प्रारम्भ किया। मानवता का रूप जो कुछ समय पहले उसकी अमानवीयता और अज्ञानता से विकृत हो गया था धीरे धीरे पुनः अपनी स्वाभाविक अवस्था में आने लगा। परन्तु १०० वर्ष की गुलामी पश्चिमी सभ्यता तथा उसकी स्वयं की विभिन्न परम्पराओं ने उसे

पत्थर से इतना मार दिया था कि वह पूर्णरूपेण अपनी सम स्थिति में नहीं लौट पाया। आज केवल २ प्रतिशत व्यक्ति ही ऐसे हैं जो अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ पाए हैं। ५ प्रतिशत अभी भी उसी अज्ञान और अन्धकार के भूलभुलैया में भटककर भटक रहे हैं। आज भी विनाश और बरबादी का वे पथ अपनाए हुए हैं जिसके बाद उनकी जिन्दगी आखिरी सांस छोड़ देगी।

गीता में श्रीकृष्ण ने कहा कि 'पृथ्वी पर जब जब भी धर्म का नाश होता है और असुर प्रकृति के व्यक्ति बढ़ने लगते हैं तो मैं स्वयं कोई न कोई अवतार लेकर पृथ्वी पर आता हूं और इस अधर्म और पाप के अन्धकार को मिटाता हूं।" उसी प्रकार अणुव्रत के प्रवर्तक आचार्य श्रीतुलसी का आविर्भाव मानवता के उसी विकृत रूप को स्वाभाविक अवस्था में लाने को हुआ है। अणुव्रत आन्दोलन द्वारा आज तो वह लोगों के हृदय में ज्ञान और बोध की मशाल जला रहे हैं। उससे हजारों लाखों व्यक्ति आज उचित मार्ग पा चुके हैं और हजारों का यह प्रकाश स्तम्भ बनकर खड़ा उन्हें उनके मार्ग की ओर संकेत कर रहा है। सत्य अहिंसा ज्ञान साधना तपस्या अणुव्रत रूपी वृक्ष के वे फल हैं, जिन्हें खाकर इन्सान इन्सान न रह कर देवता बन जाता है और मनुष्य अपनी कुटिलता को छोड़ स्वाभाविक अवस्था में आ जाता है।

अपने आपमें आहत इन्सान क्षत-विक्षत हो चुका है। दुखी और अशांत होकर आज वह शान्ति और सत्य की खोज में भटक रहा है और अणुव्रत भी अमाप आज भी उसकी भटकन की समाप्ति के लिए संकेत कर रही है।

इसके बाद फिर ज्ञान का प्रकाश होगा। संसार सत्य अहिंसा, साधना और तपस्या के पथ पर चलकर अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच सकेगा।

२५

अणुव्रतों का पुनर्जन्म

—श्री शीलचन्द्र 'साहित्यरत्न'

नीति विवेक और सदाचार जीवन के प्रहरी हैं जीवन के रक्षक हैं। इसलिये जब मानव समाज में अनैतिकता विषमता और शोषण व उत्पीड़न की भावना और विभीषिका के रूप में छा जाती है तब हमारे देश के ऋषि-महर्षि एवं साधु-सन्त उन्हें दूर करने के लिए तत्त्व चिन्तन करते हैं और वे अपने चिन्तन की सहायता से समस्याओं का समाधान कर मानव-समाज को नई दिशा की ओर उत्प्रेरित करते हैं। मन्त्रद्रष्टा और तत्त्वदर्शी ऋषि मुनियों की परम्परा अपने देश में अक्षुण्ण रूप से सतत इस काम को करती आ रही है। आज भी कर रही है।

जीवन के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण उपभोक्तावादी दृष्टिकोण है और वह शोषण भावना पर आधारित है। जब मनुष्य दूसरों की सुख-सुविधा का न्याय-अन्याय का धर्म अधर्म का विचार छोड़कर देह का उपासक बन जाता है तब उसके भीतर रहने वाली आत्मा सुषुप्त हो जाती है और वह जड़ का भूत का द्रव्य या मैटर का उपासक बनकर अपने क्षुद्र अहम् के पालन-पोषण को ही अपना लक्ष्य बना लेता है। फिर समाज में छीना झपटी और आपा-धापी के वातावरण के कारण घोर असन्तोष छा जाता है। मनुष्य-मनुष्य को भाई-भाई को अपना दुश्मन समझने लगता है और यह संसार नरकवत् प्रतीत होने लगता है। ऐसी ही अवस्था में पुराने तत्त्वों का आचरण और सदाचार सम्बन्धी सिद्धान्तों का पुनर्जन्म हुआ करता है।

भारतवर्ष की दासता के युग में ही हमारे ऋषि-महर्षियों ने महापुरुष और महात्माओं ने अपने आत्म-मंथन के द्वारा तत्त्वों का साक्षात्कार करना प्रारम्भ कर दिया था। परमहंस श्री रामकृष्ण ने बारी-बारी से हिन्दुत्व इस्लाम और

ईसाइयत का अभ्यास करके सभी धर्मों के भीतर छिपे हुए एकत्व का उद्घोष करते हुए कहा था—सभी धर्मों का समन्वय होना चाहिए। उन्होंने विविध धर्मों की उपासना-पद्धति और उनके तत्त्वों का तटस्थ बुद्धि से विश्लेषण करके सभी धर्मों के प्रति अद्वैत बुद्धि और श्रद्धा का भाव जगाया। उनकी यह देन केवल भारतवर्ष को ही नहीं विश्व को बहुत बड़ी देन थी। परतन्त्रता के उस युग में जब हिन्दु मुस्लिम वैमनस्य को भड़काया जा रहा था परमहंस रामकृष्ण की यह भावना मानो मध्ययुगीन रूढ़िवादिता और कट्टरता पर मानवता की विजय थी।

और तब आये अरविन्द। अरविन्द के सामने भारत की स्वतन्त्रता का प्रश्न गौण था पृथ्वी को स्वर्ग बनाने का—धरती के स्वर्गीकरण का उद्देश्य ही प्रधान था। उन्होंने धरती को स्वर्ग बनाने की कल्पना की। उन्होंने हमें बतलाया कि तुम स्तर-स्तर मन की सीमा से बुद्धि के परे से ऊपर उठो। तुम आध्यात्मिकता का अनुभव करते हुए बुद्धि के स्तर से ऊपर उठकर अतिमानस का निर्माण करो। उनका कहना था कि जैसे जड़ या द्रव्य से जीव, जीव से बुद्धि या मानस की उत्पत्ति हुई है, वैसे ही मानस से अति मानस का विकास होगा। अतिमानस के स्तर पर पहुंचकर मनुष्य को यह समझने-समझाने की जरूरत नहीं रह जायेगी कि हम सब भाई भाई हैं, मनुष्य-मनुष्य समान हैं, सभी एक हैं। उस समय वह इस सत्य का स्वयं अपने जीवन में साक्षात्कार करेगा। उसका आचरण स्वतः इस सत्य को अपने चरित्र से प्रस्फुटित करेगा और तब चेतना के स्तर पर उतरने वाला अति मानव—जो नीत्शे या डार्विन का महामानव—दानव मानव नहीं चरित्र के बल पर अति मानस के स्तर पर पहुंचा हुआ अतिमानव होगा, समाज सेवा के द्वारा पृथ्वी का स्वर्गीकरण करेगा। वह पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की चेष्टा में लीन रहेगा। वैर-विरोध और पारस्परिक कटुता का स्वयं शमन हो जायगा। राग-द्वेष से ऊपर उठकर तटस्थ बुद्धि से आत्म-विश्लेषण करते हुए हम आप भूमि पर बिखरे दीन मन से जब मनुष्य समाज-सेवा में लगेगा तभी दुनिया के दुःखों से छुटकारा होगा। तभी मनुष्य की सामूहिक मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होगा।

इन समस्त भावनाओं को अपने चरित्र में आत्मसात् करते हुए मनुष्य न

पाशविक युद्धों का पाशविकता के द्वारा नहीं मानवता के द्वारा शमन करने का मार्ग प्रशस्त करने वाले और घृणा विद्वेष एवं कटुता को जंगलीपन की निशानी बतलाने वाले महात्मा गान्धी का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने बतलाया कि अहिंसा सत्य अस्तेय अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को जीवन में उतारना होगा। प्रतिपक्षी की तोपों के ऊपर अहिंसक शक्तियों से विजय प्राप्त करनी पड़ेगी। वीरता मारने में नहीं मरने में भी नहीं, अपने मन को वश में करने में है और अपने तथाकथित विरोधी के हृदय को जीतने में है। महात्मा गान्धी ने सत्याग्रह का प्रवर्तन किया—वीरता को नये रूप में उपस्थित किया।

इन्हीं महापुरुषों के साधना मार्ग पर चलकर भारत स्वतन्त्र हुआ। भारत ने विश्व को पंचशील का नारा दिया। सत्यमेव जयते का जयघोष सुनाया। संसार में उसकी कीर्ति व्याप्त हुई। विकल विश्व को नव मानवता का सन्देश मिला।

यह सब होते हुए भी देश में विषमता और अनैतिकता का वातावरण चरम सीमा पर पहुंच रहा था। अनैतिकता के वातावरण में तेलंगाने की भूमि समस्या विकट हो चली थी और देश को अपने ही भीतर प्रतिद्वन्द्विता का सामना करना पड़ रहा था। देश की नवार्जित स्वतन्त्रता खतरे में थी। तेलंगाने में भीतर भीतर असन्तोष की आग धधक रही थी। इस पृष्ठभूमि पर सन्त विनोबा का आगमन हुआ। देश में इस छोर से उस छोर तक भूदान की लहर व्याप्त हो उठी। 'सबै भूमि गोपाल की' का नारा गूंज उठा। भूदान सम्पत्तिदान बुद्धिदान और जीवनदान के नए-नए जयघोष सुनाई पड़ने लगे। सत्ता-मूलक राजनीति के स्थान पर लोकनीति का आविर्भाव हुआ।

फिर भी वातावरण में निराशा छाई थी। अनैतिकता का बोलबाला था। धन मनुष्य की छठी कर्मेन्द्रिय समझा जाने लगा था। येन केन प्रकारेण सुख सुविधा और सत्ता-सम्पत्ति को जुटाने में लोग लग गए थे जिन्होंने कभी भगवान् महावीर की वाणी सुनी थी, जिन्होंने गौतम बुद्ध का उपदेश सुना था और जहां रामकृष्ण परमहंस अरविन्द और महात्मा गान्धी के विचार गूंज चुके थे।

उस समय वीरों और त्यागियों के राजस्थान के क्षितिज पर सफेद हंसों की पंक्तियों की तरह जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी मुनियों की टोली आचार्य तुलसी के नेतृत्व में 'संयमः खलु जीवनम्' का जयघोष करती हुई चलती। लोगों ने विस्मय विस्फारित नेत्रों से इन पंच महाव्रती मुनियों को देखा। एक-सी संख्या में नहीं साढ़े छह सौ की संख्या में जैन मुनियों एवं साध्वियों की टोलियां मुखपट्टी बान्धे रजोहरण और भिक्षा-पात्र लिए उनसे भिक्षा मांग रही हैं। वो मुझे भिक्षा दो धन मुझे नहीं चाहिए, मुझे सम्मान भी नहीं चाहिए, मैं तो उस चमत्कार का उपयोग सुनना भी अच्छा नहीं समझता। अरे भक्तों! मुझे दूध घी तो कौन कहे फूल की माला भी नहीं चाहिए। मैं तो सिर्फ तुम्हारे दुर्गुणों की दुश्चिन्ता की तुम्हारे प्रमादों की भिक्षा मांगने आया हूं। लो, भर दो मेरी झोली।

और यह भिक्षा मेरे संयम अन्तर्ज्योति से भरी हुई उनकी आंखें उसी प्रकार चमकती हैं जैसे भूख की मारे भोजन पाकर और प्यासे की भांति पानी पीकर तृप्ति से चमक उठती है—जैसे वोटरों की कतारों को देखकर उम्मीदवार की आंखें और जैसे दान-पत्रों को पाकर सन्त विनोबा की आंखें चमक उठती हैं तथा जैसे संघर्ष के बाद खोई हुई गौओं की आंखें अपने बछड़े को पाकर चमक उठती हैं।

यह है अणुव्रतों का पुनर्जन्म यह है 'संयमः खलु जीवनम्' का पुनर्जन्म। तीर्थंकरों ने आज से हजारों वर्ष पहले महाव्रतों और अणुव्रतों का उपयोग किया था। वह युग भी कुछ इसी प्रकार स्वतन्त्रता का युग था विचार-क्रान्ति का युग था लोकतन्त्र का युग था और सामन्ती विलासिता का युग था। आज के लोक-वादियों की तरह उस युग में भी उच्छृंखलवादी चार्वाकों ने विचारों का हुड़दंग मचा रखा था। विचारधाराओं की टकराहट से उस युग में भी ऐसा कोलाहल सुनाई पड़ रहा था—जैसा आज सुनाई पड़ रहा है।

आज के युग में धर्मनिरपेक्षता का बोलबाला है और राम के घर में कईबार विनाशलीला के डर से भयभीत होकर जनता—देश-देश की जनता न केवल रक्त-क्रान्ति पर आमादा है बल्कि अणुबम और परमाणु बम को हाथ में लेकर

दुनिया विध्वंस के कगारे पर खड़ी है। एक छोटी-सी चिनगारी भी इस परमाणु बम रूपी बारूदखाने में पड़कर प्राणिजगत् का संहार कर सकती है। आज जगत में सर्वत्र वैर और प्रतिशोध का वातावरण व्याप्त है और लोग भगवान् महावीर की 'मित्ति मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झ न केणई' अर्थात् सभी जीवों के प्रति मेरी मैत्री भावना है किसीसे मेरी शत्रुता नहीं है, इस वाणी को भूलते जा रहे हैं।

उपर्युक्त वातावरण में ठीक समय पर औचित्य-अनौचित्य की सजग भावना में लीन पंच महाव्रतों का पालन करने वाले भगवान् महावीर के अनुयायी जैनाचार्य श्री तुलसी के नेतृत्व में अणुव्रतों का पुनर्जन्म हुआ है। अणुव्रतों के सिद्धान्त इतने पुष्ट और इतने शक्तिशाली हैं कि पिछले ढाई हजार वर्षों के आंधी-पानी से भी वे विनष्ट नहीं हुए। महाकाल की छाती पर पांव टेककर खड़े होने वाले नश्वर शरीर के घेरे में आबद्ध ये पांचों सिद्धान्त व्यक्ति को 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' की गरिमा से गौरवान्वित करने वाले हैं। इनका उद्घोष हमें आज इस धर्म कोलाहलमय युग में सुनाई पड़ रहा है जब पूर्णिमा का चांद हमारे कवि लेखकों के लिए चावल की पीठी की तरह मालूम पड़ने लगा था जब चमकता हुआ सूरज तवे से निकली हुई लाल-लाल रोटियों की तरह प्रतीत होने लगा था और जब आकाश के ग्रह-नक्षत्रों से भी बढ़कर हमें चांदी के सिक्के आकर्षक दिखलाई पड़ने लगे थे जब हमें यह सुनाई पड़ने लगा था कि धर्म अफीम है सारे संसार का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है और समस्त कलाएं, सभी पुरुषार्थ सूचक कृतियां व्यक्ति के अन्तस्तल के भीतर छिपी हुई कुण्ठाओं की प्रतीक हैं। उस समय राग द्वेष और कुण्ठाओं से रहित अनवरुद्ध झील की तरह आवेग रहित निर्द्वन्द्व हृदय वाले आचार्य तुलसी के मानस में जो अणुव्रतों के द्वारा जीवन के भीतर समाहित ये ज्योति जगाने का सम्पूर्ण मानवता को महा मुक्ति के पथ पर ले चलने का संकल्प उगा है, वह मानव की जय-यात्रा का प्रतीक है।

जिस भांति महाराजा उदयन प्रद्योत महासेन और मगधाधिपति बिम्बसार के युग में इन व्रतों का उद्घोष सुना था उसी प्रकार आज भारत फिर से

उस समय वीरों और त्यागियों के राजस्थान के क्षितिज पर सफेद हंसों की पंक्तियों की तरह जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी मुनियों की टोली आचार्य तुलसी के नेतृत्व में 'संयम खलु जीवनम्' का जयघोष करती हुई उतरी। लोगों ने विस्मय-विस्फारित नेत्रों से इन पंच महाव्रती मुनियों को देखा। एक-दो संख्या में नहीं सारे एक सौ की तादाद में जैन मुनियों एवं साध्वियों की टोलियां गृहस्थों के सामने रजोहरण और भिक्षा-पात्र लिए उनसे भिक्षा मांग रही हैं। दो मुझे भिक्षा दो धन मुझे नहीं चाहिए, मुझे सम्मान भी नहीं चाहिए, मैं तो जय जयकार का उद्घोष सुनना भी अच्छा नहीं समझता। अरे पगलो! मुझे फूल की तो कौन कहे सूत की माला भी नहीं चाहिए। मैं तो सिर्फ तुम्हारे दुर्गुणों की अनैतिकता की तुम्हारे प्रमादों की भिक्षा मांगने आया हूं। लो भर दो मेरी झोली।

और यह भिक्षा लेते समय आत्मज्योति से भरी हुई उनकी आंखें उसी प्रकार चमकती हैं जैसे भूखे की आंखें भोजन पाकर और प्यासे की आंखें पानी पीकर तृप्ति से चमक उठती हैं—जैसे वोटरों की कतारों को देखकर उम्मीदवार की आंखें और जैसे दान-पत्रों को पाकर सन्त विनोबा की आंखें चमका करती हैं तथा जैसे जंगल से चरकर आई हुई गौओं की आंखें अपने बछड़ों को पाकर चमक उठती हैं।

यह है अणुव्रतों का पुनर्जन्म यह है 'संयम खलु जीवनम्' का पुनर्जन्म। तीर्थंकरों ने आज से हजारों वर्ष पहले महाव्रतों और अणुव्रतों का उद्घोष किया था। वह युग भी कुछ इसी प्रकार स्वच्छन्दता का युग था विचार-क्रान्ति का युग था भोगवाद का युग था और सामन्ती विलासिता का युग था। आज के भोगवादियों की तरह उस युग में भी उच्छेदवादी चार्वाकों ने विचारों का हुड़दंग मचा रखा था। विचारधाराओं की टकराहट से उस युग में भी ऐसा कोलाहल सुनाई पड़ रहा था—जैसा आज सुनाई पड़ रहा है।

आज के युग में अनैतिकता का बोलबाला है। लोभ राग के मद से बेईमान, विलासिता के मद में मदान्ध होकर जनता—देश-देश की जनता न केवल रक्त-क्रान्ति पर आमादा है बल्कि अणुबम और परमाणु बम को हाथ में लेकर

३६

अणुव्रत-आन्दोलन

—श्री बच्चूप्रसाद सिंह बी० ए०

आधुनिक युग में भौतिकवादी सभ्यता का साम्राज्य ही सर्वाधिक शक्तिशाली है। हमारा दृष्टिकोण ही भौतिक हो गया है और हम संसार की सभी वस्तुओं का मूल्यांकन भी इसी मापदण्ड से करने लग गए हैं। समाज का बाह्य जगत बड़ा ही नूतन दृष्टिगोचर हो रहा है। मानव ने विज्ञान के बल से अनेक विजय प्राप्त की है और अब काल तथा स्थान पर भी हमारा आधिपत्य स्थापित हो गया है। अणुबम का निर्माण हुआ। संसार की सबसे दुर्गम और अगम चोटी एवरेस्ट पर हमारी विजय-पताका लहरा रही है। हम वायु में उड़ सकते हैं। पानी के वक्ष को चीर कर अपनी अभीष्ट सिद्धि कर सकते हैं। लाखों-हजारों कोसों की दूरी पर निकली हुई वाणी का श्रवण कर सकते हैं, किन्तु अपने अन्तर्मन की अवस्था से अनभिज्ञ हैं। वहां एक बहुत बड़ी हलचल और अशान्ति है कोलाहल मचा हुआ है किन्तु उस पर सोचने के लिए समय हमारे पास नहीं है। इसका मूल कारण है कि इस मानव-समाज के पास मस्तिष्क को छोड़कर हृदय या आत्मा नाम की वस्तु ही नहीं रह गई है। हम निर्णय करते हैं शुष्क तर्कों के आधार पर और हृदयहीनता को ही मनुष्य की महानता का परिचायक मान बैठे हैं। इस युद्ध अशान्ति रक्तपात अनाचार व्यभिचार और तृष्णातुर मानव के पाशविक व्यवहारों से व्यक्ति की मानवता कराह उठी और अब उसे जागना चाहिए, अन्यथा मानव अपनी सीमा का अतिक्रमण कर दानव बन जायेगा और समाज की बची-खुची शान्ति भी भस्मीभूत हो जायगी।

समग्र विश्व का मानव आज दो दिशाओं में बटकर एक संधिस्थल पर खड़ा है। एक युद्ध और रक्तपात के पक्ष में है तो दूसरा विश्व-शान्ति के लिए

यह वाणी गूंज रही है। तीर्थंकरों की परम्परा को जीवित रखने वाले जन मुनि आज कह रहे हैं—अणुव्रतों का पालन करते हुए महाव्रतों की ओर बढ़ो। सभी जीव तुम्हारे मित्र हैं। तुम्हारे शत्रु तुम्हारे बाहर नहीं, तुम्हारे भीतर ही तुम्हारी अनैतिकता में रिश्वतखोरी में परिग्रह में और अब्रह्मचर्य में छिपे हैं।

तुम उठो तुम जागो इन कषायों को—काम-क्रोध मद लोभ और परिग्रह को जीत कर तुम विजयी बनो। तुम जड़ नहीं चेतन हो। तुम पुद्गलों (परमाणुओं) के समूह से निर्मित इस शरीर के भीतर आबद्ध अपनी अन्तरात्मा की आवाज को सुनो। तुम जागो और दे दो मेरी झोली में अपने दुर्व्यसनों का दान। मैं उन्हें रख लूंगा। तुम इन्हें जन्म-जन्मान्तरों से ढोते आ रहे हो। इनके बोझ के नीचे छटपटाते कराहते रहे हो। इन्हें छोड़ते ही तुम्हारी आत्मा हल्की होकर ऊपर उठेगी। तुम महान् हो। अपनी महानता को पहचान कर तुम वास्तविक अर्थों में महान् बनो।



३६

अणुव्रत आन्दोलन

—श्री ब्रजप्रसाद सिंह बी० ए०

आधुनिक युग में भौतिकवादी सभ्यता का साम्राज्य ही सर्वाधिक शक्तिशाली है। हमारा दृष्टिकोण ही भौतिक हो गया है और हम संसार की सभी वस्तुओं का मूल्यांकन भी इसी मानदण्ड से करने लग गए हैं। समाज का बाह्य जगत बड़ा ही नूतन दृष्टिगोचर हो रहा है। मानव ने विज्ञान के बल से अनेक विजय प्राप्त की है और अब काल तथा स्थान पर भी हमारा आधिपत्य स्थापित हो गया है। अणुबम का निर्माण हुआ। संसार की सबसे दुर्गम और उत्तुंग चोटी एवरेस्ट पर हमारी विजय-पताका फहरा रही है। हम वायु में उड़ सकते हैं। पानी के वक्ष को चीर कर अपनी अभीष्ट सिद्धि कर सकते हैं। लाखों-हजारों कोसों की दूरी पर निकली हुई वाणी का श्रवण कर सकते हैं, किन्तु अपने अन्तर्गत की अवस्था से अनभिज्ञ हैं। वहां एक बहुत बड़ी हलचल और अशान्ति है, कोलाहल मचा हुआ है, किन्तु उस पर सोचने के लिए समय हमारे पास नहीं है। इसका मूल कारण है कि इस मानव-समाज के पास मस्तिष्क को छोड़कर हृदय या आत्मा नाम की वस्तु ही नहीं रह गई है। हम निर्णय करते हैं शुष्क तर्कों के आधार पर और हृदयहीनता को ही मनुष्य की महानता का परिचायक मान बैठे हैं। इस युद्ध, अशान्ति, रक्तपात, अनाचार, व्यभिचार और नृशंसतापूर्ण मानव के पाशविक व्यवहारों से व्यक्ति की मानवता कराह उठी और अब उसे त्राण चाहिए, अन्यथा मानव अपनी सीमा का अतिक्रमण कर दानव बन जायगा और समाज की बची-खुची शान्ति भी भस्मीभूत हो जायगी।

समग्र विश्व का मानव आज दो विभागों में बंटकर एक संधिस्थल पर खड़ा है। एक युद्ध और रक्तपात के पक्ष में है तो दूसरा विश्व-शान्ति के लिए

भगीरथ परिश्रम कर रहा है। किन्तु यह तो एक सुनिश्चित सत्य है कि मनुष्य शान्तिप्रिय जीव है और अब वह युद्ध की विभीषिका से थर-थर कांप उठा है। मनुष्य ने दानव की वृत्ति का परिचय प्राप्त कर लिया है और अब उसकी दैवी वृत्ति प्रबल हो रही है।

मानव की इसी भावना की अभिव्यंजना आज के विभिन्न नैतिक आन्दोलनों में भी हो रही है। मनुष्य आखिर पशु नहीं है, उसमें विचारने की शक्ति है और इसी गम्भीर चिन्तन के फलस्वरूप संसार के मनीषियों और चिन्तकों ने नैतिक पुनर्गठन अणुव्रत और सर्वोदय आदि आन्दोलनों का सूत्रपात किया है। इसी युग में बापू हुए और इसी देश में बुद्ध और महावीर जैसे सन्तों का आविर्भाव हुआ। जब सारा विश्व इन महान् आत्माओं की विचारधारा से प्रभावित हुआ है तो भारत में इसकी लहर का प्रस्फुटित होना कोई अस्वाभाविक नहीं।

भारतवर्ष से विदेशी सत्ता का अन्त हो गया। स्वतन्त्रता का स्वर्णिम प्रभात हुआ। सभी के हृदय में नवीन आशाओं का संचार हुआ। किन्तु आज वह आशा का पौधा कुम्हलाया-सा जा रहा है। निराशा की भावना ही जन-जीवन में प्रबल होती जा रही है। आखिर ऐसा क्यों? चूंकि समाज में जटिल विषमताएं हैं और एक पर एक समस्यायें हमारे सामने मुंह बाये सर्वदा खड़ी रहती हैं। समाज से शोषण का अन्त करना तथा विश्व में शान्ति की स्थापना करना आज के मानव का प्रमुख लक्ष्य है। उसकी उपलब्धि के हेतु ही हम सत्प्रयत्न करते जा रहे हैं और आत्म-विश्वास के साथ अग्रसर हों तो सफलता हमारे पैर चूमेगी।

व्यक्ति के जीवन से आध्यात्मिकता और नैतिकता का तिरोहित हो जाना ही उपरोक्त आन्दोलनों का जन्मदाता है। मनुष्य आज दुःखी क्यों है? चूंकि उसने मनुष्य पर विश्वास करना छोड़ दिया है। इसका कारण है कि हममें सदाचार के बदले अनाचार, सत्य के बदले असत्य ईमानदारी के बदले बेईमानी और भलाई की जगह बुराई आ गई है। प्रत्येक व्यक्ति निषेधात्मक ढंग से सोचता है। यहां बुराई वहां बुराई यह चोर, वह बेईमान। कोई भी शायद कभी यह नहीं सोचता कि स्वयं उसमें कितने दुर्गुण भरे पड़े हैं। यदि आत्म-दर्शन और

आत्मालोचन करें तो व्यक्ति को पता चले कि वह कहां है और कितना गिरा हुआ है। राष्ट्रीय जीवन में सत्य और अहिंसा की भावना के अभाव में ही रामराज्य के स्वप्न को मूर्तरूप धारण नहीं करने दिया।

भारत की भूमि दार्शनिकों और चिन्तकों की भूमि रही है। इसे जगद्गुरु बनने का सौभाग्य प्राप्त है और सांस्कृतिक क्षेत्रों में इस देश ने सदा से विश्व का नेतृत्व किया है। जैन-धर्म का भी विश्व-दर्शन में एक विशिष्ट स्थान है तथा धार्मिक इतिहास एवं राष्ट्रीय निर्माण में इसने महत्वपूर्ण योग दिया है।

जन श्वेताम्बर तेरापन्थी संप्रदाय के आचार्य श्री तुलसीगणी ने भी विश्व के समक्ष एक नवीन दर्शन प्रस्तुत किया है और मानवता को एक नया मार्ग दिखाया है। अणुव्रती संघ की स्थापना उनके गम्भीर अध्ययन सात्विक जीवन तथा ठोस अनुभव का परिणाम है। यह जीवन-शुद्धि के आन्दोलन का प्रवर्तक संघ नाम में अति लघु किन्तु काम में अति महान् है। इसका उद्देश्य सामान्य मानव के नैतिक स्तर को उच्च बना उसे पाशविकता के गर्त से निकाल कर महामानव के पद पर आसीन करना है। संघ के विचार मधुर प्रगतिशील तथा पूर्णतः क्रान्तिकारी हैं। सम्भवतः पहली बार एक धार्मिक संस्था द्वारा ऐसे श्रम का सूत्रपात हुआ है जो साम्प्रदायिकता की संकीर्ण परिधि से सर्वथा मुक्त और रूढ़ि-विहीन है। इसका द्वार किसी भी मनुष्य के लिये उन्मुक्त है और उसके विकास हेतु उसका सर्वत्र अभिनन्दन किया जा रहा है।

संघ के नियम

संघ के सब नियमों की संख्या तो चौरासी है, किन्तु मुख्यतः इसके पांच ही भाग हैं—अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन पांच तत्वों की उपासना का ही सदस्यों को व्रती बनना पड़ता है तथा इसीको स्पष्ट तथा सुगम बनाने के हेतु इनके इतने भेद कर दिए गए हैं। अब यदि इन अध्यायों के एकाध नियमों का अवलोकन करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि ये कितने व्यापक और राष्ट्र-निर्माण में कितना सहयोग देने वाले हैं। अहिंसा अध्याय का पांचवा नियम है कि किसी भी व्यक्ति को अस्पृश्य मानकर उसका तिरस्कार न करना। अहिंसा का इतना सूक्ष्म पर्यवेक्षण शायद सामान्य बुद्धि की पहुंच के परे है।

किसी को तिरस्कृत करने की भावना को भी हिंसा की कोटि में परिगणित करने वाला संघ कितना महान् हो सकता है इसका अनुमान तो स्वतः लग ही जाता है। यदि अपने देश में इस भावना का पूर्ण प्रचार हो जाए तो छुआ-छूत का भेद स्वेच्छा से मिट जाएगा और इस कार्य में शासन के हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जायगी। ऐसे विचार यदि प्रचलित रहते तो कुछ दिन बीते जिस दुर्घटना का सामना सन्त विनोबा को देवघर में करना पड़ा शायद वैसी बात एकदम नहीं होती और आपसी भेदभाव तथा जातिवाद का एवं उच्च-नीच का भेदभाव ही मिट गया होता।

इसी तरह सत्यव्रत के अध्याय का पांचवां नियम है कि किसी व्यक्ति से झूठा खत या दस्तावेज न लिखवाना। इस नियम का पालन न होने के कारण भी समाज के कितने सदस्य धनी से भिखारी हो गए और एक मुकद्दमेबाजी की वजह से कितने मनुष्यों को सच्चाई का दामन छोड़ झूठ की शरण लेनी पड़ी। फिर अचौर्य व्रत के अध्याय का पांचवां नियम है कि किसी चीज में मिलावट कर या नकली को असली बताकर न बेचना। यदि व्यापारियों में सभी इस संघ के सदस्य बन जाएं और इस नियम का पालन करने लग जाएं तो यह निश्चित है कि सरकार व्यर्थ के परिश्रम से बच जायगी और सभी नागरिकों के स्वास्थ्य की रक्षा होगी। व्यापारी भी आत्म-ग्लानि चिन्ता और अन्यान्य कष्टों से बच जाएगा। इस तरह इन नियमों से व्यक्ति और समाज दोनों की रक्षा होती है और राष्ट्र का भी बहुत कल्याण होता है।

ब्रह्मचर्यव्रत का पांचवां नियम है—एक पत्नी के होते दूसरा विवाह न करना। इस नियम का यदि पालन किया जाए तो समाज की अनेकों कुरीतियां दूर हो जाएंगी। न बेमेल ब्याह का प्रश्न उठेगा न वृद्धावस्था में शादी कर मूक नारी के जीवन बर्बाद करने की समस्या। इसमें एक अपवाद भी दिया गया है कि यदि पत्नी सहर्ष आज्ञा देती हो तो पुरुष दूसरी शादी भी कर सकता है। इससे यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि नियमों को यथासाध्य सुगम और व्यावहारिक बनाने की चेष्टा की गई है। पांचवें परिच्छेद में अपरिग्रह व्रत का ग्यारहवां नियम है कि दूषित एवं घृणित तरीकों से नौकरी, ठेका लाइसेन्स आदि

प्राप्त न करना। यह नियम स्पष्टतः घोषित कर रहा है कि वर्तमान समाज की निम्न मनोवृत्तियों की ओर संस्थापक का ध्यान पूर्णतः आकृष्ट है। उन्होंने समाज की समस्याओं का गम्भीर अध्ययन किया है। इस प्रकार संघ के सभी नियम स्वर्णाक्षरों में अंकित किए जाने योग्य हैं और अधिक से अधिक मानवता के पुजारी यदि इसे आत्मसात् करलें तो संसार में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाए। संसार की दबी हुई, कुचली हुई और कराहती हुई मानवता इस संघ में शान्ति प्राप्त कर सके। चूंकि इसका एकमात्र लक्ष्य मानवमात्र को आध्यात्मिक जीवन की ओर प्रवृत्त कर सच्चे सुख की पहिचान करा देना है।

इस संघ का भविष्य उज्ज्वल दीख पड़ता है क्योंकि यह एक महान् सन्त द्वारा निःस्वार्थ भाव से संचालित आज की अस्वस्थ राजनीति और दलबन्दी से मुक्त है। इसमें न किसी देश या विदेश का प्रश्न है न किसी जाति या धर्म का एकाधिपत्य है। सारे विश्व के पुरुष और नारी सब की दृष्टि में समान हैं और इसके सदस्य बन सकते हैं। चाहे कोई हिन्दू हो या मुसलमान पारसी हो या क्रिस्तान सभी संघ के शरण में आ अपनी कलात्मक और रुग्ण मानवता का कायाकल्प कर सकते हैं। संघ के इसी व्यापकत्व से प्रभावित हो यूरोप और एशिया तथा अन्य महाद्वीपों के चिंतकों ने इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है और सभी इसकी सफलता की शुभकामना करते हैं।

आचार्य श्री तुलसीगणी ने दिल्ली अधिवेशन में इसे स्पष्ट बताया था कि इस संघ का संचालक मैं हूँ इसका अर्थ यह नहीं कि सदा मेरे ही सम्प्रदाय के लोग इसके संघप्रमुख होंगे। स्पष्ट विदित होता है कि गणतन्त्र के अधिकारों पर पूरा ध्यान दिया गया है तथा कोई भी दकियानूसी विचार इसमें सम्मिलित नहीं किया गया है। महिलाओं का भी समानाधिकार दिया गया है तथा वे भी संघ की सदस्या बन कर समाज का कल्याण कर सकती हैं। प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने भी इस आन्दोलन की आवश्यकता को महसूस किया है तथा इसकी प्रगति की शुभकामना की है। प्रधानमन्त्री श्री नेहरू भी आचार्य श्री से मिलकर बहुत प्रभावित हुए थे और सन्त विनोबा ने तो इस आन्दोलन को परमावश्यक बताया तथा मानव कल्याण का प्रभात माना है। इस

बड़े चिन्तकों की बातें तो दूर रहीं सामान्य सामाजिक व्यक्ति भी इसकी ओर बहुत अधिक आकृष्ट हुए हैं और सदस्यों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। किसी भी शुभ कार्य को प्रारम्भ करते समय बहुत ही थोड़े लोगों का ही उसमें विश्वास जमता है। उदाहरणार्थ कांग्रेस के इतिहास या भूदान यज्ञ ने तो अर्थशास्त्र में एक नूतन अध्याय जोड़ दिया है जबकि प्रारम्भ में लोग इसकी सफलता में बहुत कम विश्वास करते थे।

एक सुझाव

समस्या उठती है कि इस पवित्र आन्दोलन और युगान्तरकारी संदेश को जन-जन के पास पहुंचाया कैसे जाए? ऐसे आन्दोलन के लिए यह समय परिपक्व है, किन्तु उसे व्यापक बनाने के हेतु पूर्ण प्रचार तथा उपर्युक्त वातावरण के हेतु जन-सम्पर्क की अपेक्षा है। इस कार्य में अणुव्रतियों को संत विनोबा के मार्ग पर विचारना चाहिए तथा उपादेय होने पर उसको अपनाना चाहिए। चूंकि जब तक हम गांवों में नहीं जाते प्रत्येक झोंपड़ी तक आवाज नहीं पहुंच जाती तब तक कार्य पूर्ण नहीं हो सकता और लक्ष्य से संघ दूर भी रह जायेगा। भारत की आत्मा दूर देहात के गांवों में बसती है। उसे जगाना होगा और उन व्यक्तियों को मार्ग पर लाना होगा जिन्हें आज के कलुष और विलासमय वातावरण ने निर्मल जीवन के मार्ग से विचलित कर उल्टी राह पर लगा दिया है। समाचार पत्रों सभाओं रेडियो आदि की सहायता लेने पर भी वास्तविक जनसम्पर्क संभव नहीं हो पाता। इसका तो यही मार्ग है कि अणुव्रतियों की टोलियां पैदल घूम-घूम कर देश और विदेश के शहरों और गांवों में जाकर इसका प्रचार करें और संघ के कुछ एक ऐसे भी सदस्य बनाए जाएं जो अपना सारा जीवन इसके प्रचार में लगाने को स्वेच्छापूर्वक प्रस्तुत रहें और तभी उद्देश्य की उपलब्धि होगी।

मानव समाज आज घोर पतित हो उठा है, वह तो कुछ स्थलों पर पशुओं से भी बुरा है। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-दर्शन के सिद्धान्त को अपनाना चाहिए तथा यथासाध्य ममता त्याग कर्मण्य इस दुर्व्यवस्था को

द्वारा नैतिकता का प्रसार किया जाए तथा अध्यात्म को प्रश्रय दिया जाए। मात्र यही मार्ग है, जिससे विषमताएं मिट सकती हैं समस्याओं का अन्त हो सकता है और विश्व-शान्ति की स्थापना हो सकती है। मनुष्य का चरित्र ही सब कुछ है। बिना उसके स्तर को ऊंचा किए समाज और राष्ट्र का निर्माण असम्भव है। अणुव्रत आन्दोलन द्वारा राष्ट्र की मानवता को सुधारा जा सकता चरित्र का निर्माण किया जा सकता। अतः मैं कहूंगा—

दलित और मर्दित मानवता
उठे, करे अपना उत्कर्ष।
व्यापक हो जन-जन के मन में
नवयुग का अणुव्रत आदर्श।

३७

अहिंसक समाज-रचना का स्वप्न

—श्री यशपाल जैन
सम्पादक जीवन साहित्य

अणुव्रत-आन्दोलन के प्रति मेरी काफी समय से रुचि है और आचार्य श्री तुलसी के सम्पर्क में भी कई बार आ चुका हूं। मुझे उनके अमृतोपदेश भी सुनने को मिले हैं।

पिछले इतिहास के पृष्ठों को खोलकर देखा जाए तो ज्ञात होगा कि इस प्रकार के नैतिक आन्दोलन समय-समय पर होते रहे हैं। सर्वप्रथम भगवान् श्री महावीर ने नैतिक क्रान्ति का सूत्रपात किया। इसके पश्चात् भगवान् बुद्ध और महात्मा गांधी ने इसको बढ़ाया। आचार्य विनोबा व आचार्य तुलसी आज ऐसे ही महापुरुष हैं जिन्होंने संसार की विषमताओं को मिटाकर उनके हल के लिए अपना कदम बढ़ाया है। समय-समय पर ऐसे महापुरुषों का जन्म होता ही रहता है जो मानव का पथ प्रदर्शन करते हैं।

मनुष्य ने जो मानव-जीवन पाया है वह सच्चे सुख व शान्ति की प्राप्ति का वास्तविक मार्ग ढूंढ निकालने के लिए है। सन्तों व महापुरुषों ने सत्य अहिंसा का सही दिग्दर्शन कराया है। उनमें एक ही विचारधारा प्रस्फुटित होती है—जीवन में सच्चे सुख व शान्ति लाने का सही मार्ग क्या है? स्वार्थ व प्रलोभन का समर्थन सही रास्ता नहीं; त्याग संयम में साधना ही जीवनोत्थान का सही रास्ता है।

एक मजदूर जीवन व परिवार सम्बन्धी सारी चिन्ताओं से मुक्त होकर आराम की नींद लेता है। उसके विपरीत एक लखपति सेठ, जो वैभवशाली व पूंजीपति है आराम से गद्दों पर लेटे रहने पर भी चिन्ताओं में उलझे रहता है और नींद नहीं ले पाता। वह लालसाओं के पुल स्वप्न में भी बान्धता रहता है।

अर्थोपार्जन की चिन्ता उसके घुन की तरह लगी हुई है। यह आज की स्थिति है। अगर महावीर और बुद्ध पैसे से दुनिया की जन-मानस की सेवा करना चाहते तो क्या नहीं कर सकते थे? क्या उनके पास पैसे की कमी थी? नहीं अगर मानव में मानवता का संचार करने का कार्य पैसे के बस पर नहीं होता। उसके लिए त्याग चाहिए, तप व साधना चाहिए। उन्होंने राजपाट वैभव व परिवार सब कुछ छोड़ा वन में निवास किया कारण यही कि उनका यह आत्मोत्थान का सही मार्ग था। सत्य व अहिंसा के वास्तविक दृष्टिकोण से इन्होंने संसार को एक नई चेतना दी नई जागृति दी कि पैसे से भौतिक-सुख की प्राप्ति होती है आत्मिक सुख की नहीं।

स्वराज्य के बाद यहां विषमताओं का प्रचार हुआ। अनैतिकता अर्थमानी दुराचार, झूठ कपट आदि असद्व्यवहारों का प्रकोप हुआ। मानवता ने मानव से कोसों दूर किनारा कर लिया। सत्य व अहिंसा गांधीजी के साथ ही विलीन हो गए, ऐसा महसूस किया। आचार्य श्री तुलसी को इस स्थिति का अनुभव हुआ। उनके हृदय को बड़ी ठेस पहुंची। महान् पुरुषों का जन्म नैतिक क्रान्ति के लिए ही हुआ करता है। उन्होंने सोचा वर्तमान युग की विषमताओं के वातावरण में नैतिक क्रान्ति के लिए कोई सरल मार्ग खोजना चाहिए, जिसको प्रत्येक व्यक्ति सरलता से अपनाकर अपने जीवन के निर्माण में सहयोगी बने। इसी दृष्टिकोण से आज से लगभग ७ वर्ष पूर्व यह नैतिक क्रान्ति का आन्दोलन—अणुव्रत-आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। इसमें छोटे-छोटे व्रतों का उल्लेख किया गया है। मानव यदि महाव्रतों का पालन नहीं कर सकता तो अणुव्रतों का तो पालन अवश्य करे। एकदम यदि महल की ऊंची मंजिल पर नहीं पहुंच सके तो दो चार सीढ़ी ही चढ़ने का प्रयास करे। प्रयास की कसौटी पर कसे जाने पर ही प्रगति का मार्ग सम्भव है। इस प्रकार आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। धीरे-धीरे इसका विकास-क्रम बढ़ा और इतना बढ़ा कि आज सारे देश की जनता में इस प्रकार की भावनाओं का प्राबल्य हुआ। देश के सभी भागों में इस नैतिक आन्दोलन का स्वागत हुआ। देश के नेता, विचारक साहित्यकार पत्रकार आदि विशिष्ट व्यक्तियों को ऐसे

विचार पढ़कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई। मानवता के निर्माण के लिए यह अनुपम विचार है और अगर प्रत्येक व्यक्ति इसे अपनाले तो सुख व शान्ति का सभी मार्ग सरलता से प्राप्त हो जाए।

इसका प्रथम अधिवेशन दिल्ली में हुआ। सैकड़ों की तादाद में व्यक्ति शरीक हुए और इस नैतिक आन्दोलन में तुरन्त पहल में अपनी स्वीकृति दी। बाद में जोधपुर व राणावास भी मुझे जाने का सौभाग्य मिला। वहाँ बीस-बाईस भी के करीब अणुव्रती बनने के मौके आए। इस आन्दोलन में आंकड़ों का कोई महत्त्व नहीं है। देखना यह है कि कितने व्यक्तियों ने इस आन्दोलन से प्रभावित होकर अपने जीवन को बदला है। मुझे तो इस आन्दोलन के नियमों से बड़ी प्रेरणा मिली है। वास्तव में यह आन्दोलन जीवन को सही दिशा देकर मानव को आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

अणुव्रत-आन्दोलन यह नहीं कहता कि घर-बार छोड़ो संन्यासी बन जाओ या दुनिया में कुछ नहीं है। यह कहता है, यदि व्यापारी है तो व्यापार में प्रामाणिकता सच्चाई व ईमानदारी रखें। पहले इसमें कुछ झिझक-सी महसूस होगी मगर बाद में आत्म-तोष मिलेगा। अतः इस तरह व्यक्ति स्वयं सुधरे। व्यक्ति सुधार से ही समाज, देश व राष्ट्र-सुधार सम्भव है। केवल कोरी डींगें हाँकने से क्या होने वाला है? इस आन्दोलन के प्रति सभी व्यक्तियों की रुचि रही है और रहनी भी चाहिए। यह आन्दोलन जिस तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है, यदि यही क्रम रहा तो शीघ्र ही देश व राष्ट्र में नैतिक क्रान्ति का प्रभुत्व पूर्णरूपेण स्थापित कर सकेगा।

मेरी तो एक ही धारणा रही है कि जो भी व्यक्ति इस आन्दोलन में आय वे निष्ठावान् हों और गहराई के साथ चिन्तन मनन व अध्ययन करें। इच्छाओं को सीमित रखें व वर्तमान समाज की मान्यताओं को बदलने में योग दें।

शीघ्र ही यह आन्दोलन विश्वव्यापी होगा और मानव में जो मानवता की कमी है वह दिखाई नहीं देगी। अहिंसक समाज रचना का स्वप्न भी शीघ्र ही साकार हो सकेगा। ऐसा मेरा विश्वास है।